॥ श्रीः ॥

अलङ्कारसारमञ्जरी

भाषाविवृतिसहिता

रचयिता—

म० म० श्रीनारायणशास्त्री खिस्ते

सम्पादकः—

ग्रन्थकर्तृसूनुः साहित्याचार्यः

श्री पं० बटुकनाथशास्त्री खिस्ते

CHOWKHAMBA SANSKRIT SERIES OFFICE

VARANASI—221001

1979

भूमिका

प्रियविद्यार्थिनः !

भवतामधिकरकमलमिमां सविवृतिमलङ्कारसारमञ्जरीमुपस्थापयतो मम भवति महान्प्रमोदः। सूचनाप्रकाशनोत्तरं किञ्चिद्विलम्बमानेन मया भवतां चेतांसि चिरमुत्कण्ठादूनानि कृतानीति सत्यमपराद्धमेव। मन्ये अनेककार्यव्यग्रस्य मम लघुमिममपराधं मर्षयिष्यन्ति श्रीमन्तः।

इयमलङ्कारसारमञ्जरी श्रीमतां माननीयानां प्राच्यपाश्चात्त्यदर्शनपारदृश्वनां काशीस्थराजकीयसंस्कृतपरीक्षाऽध्यक्षाणां डाक्टर-मङ्गलदेवशास्त्रि-एम० ए० डी० फिल्० विद्यारत्नमहोदयानामाज्ञया तत्प्रदर्शितसरण्या च संगृहीतेति निःशङ्कमिमां परीक्षाऽभ्यासे भवन्त उपयुञ्जन्तु। यावदावश्यकं तावदेवात्र निबद्धम्, अधिकजिज्ञासुभिराकरग्रन्था अन्वेष्टव्याः। अनया मञ्जर्या कर्णकृतया परीक्षाकार्यं साधु सम्पादितं भवेदिति विश्वसनीयम्।

आद्यन्तनिविष्टसूचीपत्रसहाय्येन तत्तदलङ्कारलक्षणोदाहरणाभ्यासोऽपि भवद्भिः क्रियेत चेत्परीक्षाप्रश्नोत्तरणमतीव सुकरं स्यात्।

अशासे च मामकीनेनामुना परिश्रमेण यत्किञ्चिदपि साहाय्यं लब्ध्वा भवन्तः पूर्णमनोरथा भवेयुरिति शम्।

विजयादशमी
संवत् १९९०

अलङ्कारसारमञ्जर्याः संग्राहकः—
खिस्ते-नारायणशास्त्री

अलङ्काराणां सूची

अलङ्कारलक्षणकारिकाणां सूची

उदाहरणानां सूची

॥ श्रीः ॥

अलङ्कारसारमञ्जरी

—:०:—

अगजाननराजीव-विकासनविभाकरः ।
गजाननो विजयते द्विजराज-कलाधरः ॥ १ ॥
स्वभित्तौ स्वेच्छया विश्वमुन्मीलयति या क्षणात् ।
तां सर्वमातरं वन्दे ललितां चितिरूपिणीम् ॥ २ ॥
श्रीमत्काशिकराजकीयसुरगीर्विद्वत्परीक्षाप्रथा-
ऽध्यक्षैर्मङ्गलदेवशास्त्रिभिरहं सस्नेहमाज्ञापितः ।
छात्राणामुपकारिणीं विरचयेऽलंकारसारोत्तरां
नव्यां नव्यजनप्रियां सविवृतिं सन्मञ्जरीं सादरम् ॥ ३ ॥

तत्र तावन्निरतिशयसुखप्रदानपुरःसरं चतुर्वर्गफलप्राप्त्युपायभूतं साहित्यशास्त्रं सर्वैर्निर्विवादमुपादेयमेव। अलङ्कारास्तु तस्यैकमङ्गम्। रस एव तस्य प्राणः। तथाऽप्यलङ्कारस्यैव प्राथमिकोपस्थितिविषयत्वेन काव्यद्वारा रसावगाहने काव्यघटकशब्दार्थानुक्तशब्दार्थालङ्कारप्रतीते-रेव प्रथमसोपानस्याऽलङ्कारविवेचनपाटवं सुसम्पादितं सदेव रसाव-गाहनपातवमुल्लासयति ।

हिन्दी भाषाटीका

परम आह्लाद देता हुआ धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष रूप चारों पुरुषार्थों की फलप्राप्ति का साधन साहित्यशास्त्र सब लोगों के लिये उपादेय है, यह बात निर्विवाद है। अलङ्कार उस साहित्यशास्त्र का एक अंगमात्र है, साहित्य का प्राण तो रस ही है, तथापि कविरचनाओं में प्रथमतः अलङ्कार ही प्रतीत होते हैं, और काव्यद्वारा रसावगाहन करने में काव्यगत शब्दार्थों में निहित अलङ्कारों

का जानना ही प्रथम सोपान है, अलङ्कारविवेचना मे अभ्यस्त और कुशल बुद्धि ही क्रमशः रसप्रतीतिकौशल को भी प्राप्त कर सकती है, अतः अलङ्कारों की प्रधानता सर्वमान्य है।

तत्र चमत्कृतिरेवालङ्कारः। स च शब्दार्थान्वयव्यतिरेकाभ्यां शब्दालङ्कारत्वेनार्थालङ्कारत्वेनोभयालङ्कारत्वेन चालङ्कारान् विभजते। तथा च शब्दसन्निवेशस्यैव चमत्कारावहत्वे–शब्दालङ्कारः' अर्थस्यैव सविशेषं चमत्कारित्वेऽर्थालङ्कारः, उभयोरविशेषेण चमत्कारित्वे उभयालङ्कार इति तत्त्वम्। अलङ्करोतीत्यलङ्कारः। काव्यात्मभूतं रसं काव्यशरीरस्थानीयशब्दार्थालङ्कारद्वारा यः अलङ्करोति सोलङ्कार इति भावः। यथा देवदत्तेन स्वकण्ठे निवेशितो मुक्ताहारो देवदत्तकण्ठद्वारा देवदत्तस्यात्मानमलङ्करोति, 'शोभते हारवान् देवदत्तः' इति लोकव्यवहारश्च भवति।

चमत्कार ही अलङ्कार है, वह चमत्कार ही शब्दगत, अर्थगत और शब्दार्थोभयगत, होने से अलङ्कारों को १ शब्दालंकार, २ अर्थालंकार और ३ उभयालंकार इन तीन श्रेणियों में विभक्त करता है। जिस काव्य में कर्णमधुर किंवा जोड़-तोड़ के शब्दों का ही सन्निवेश चमत्कारावह हो, अर्थ में विशेष चमत्कार न हो, उस काव्य में शब्दालंकार ही होता है। जिस काव्य में शब्द-सन्निवेश विशेष चमत्कारी न हो किन्तु अर्थानुसन्धान में ही चमत्कार की प्रतीति होती हो, वहाँ अर्थालंकार होता है। इसी प्रकार जहाँ पर शब्द और अर्थ दोनों समानरूपसे चमत्कारी हों, वहाँ पर उभयालंकार किंवा शब्दार्थालंकार होता है। अलंकार शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार है—जो दूसरे को अलंकृत अर्थात् भूषित करे वह अलंकार है। जैसे—काव्य के शरीररूप शब्द, अर्थ, किंवा शब्दार्थ में रहनेवाली चमत्कारिणी विशेषता शब्दार्थ द्वारा काव्य के आत्मस्वरूप रस की शोभा वृद्धिगत करे तो उसे काव्यमें शब्दालंकार अर्थालंकार किंवा उभयालंकार कहा जाता है। लोकव्यवहार में भी देवदत्तने अपने गले में मोती का हार पहना, तो उस हारने देवदत्तके गलेको सुशोभित करते हुए देवदत्त (की आत्मा) को भी सुशोभित किया; 'हार पहिना हुआ देवदत्त सुन्दर मालूम होता है, ऐसा कहा भी जाता है'। इस प्रकार प्रकृत में भी समझना चाहिये।

शब्दार्थयोः शब्दस्यैव प्रथमोपस्थितत्वात् प्रथमं शब्दालङ्कारा एव निरूपणीयाः। तत्रानुप्रासयमकावेव मुख्यतः शब्दालङ्कारौ। शतश-

स्तयोः प्रभेदा आकरेषु वर्णिताः सन्ति। इह तु तयोः सामान्यलक्षणमेव ब्रूमः। चन्द्रालोकेऽनुप्राससामान्यलक्षणं नोक्तम्, छेकानुप्रासादयस्तद्भेदा एव निदर्शिताः, अतः साहित्यदर्पणीयमनुप्राससामान्यलक्षणमुच्यते—

शब्द और अर्थ इन दोनोंमें प्रथमतः शब्दकी ही उपस्थिति होती है। अतः शब्दालङ्कारोंका ही निरूपण पहले करना चाहिये। शब्दालङ्कारोंमें अनुप्रास और यमक ये ही मुख्य शब्दालङ्कार हैं। इन्हीं दोनों अलङ्कारोंके सैंकड़ों भेद-प्रभेद प्राचीन ग्रन्थोंमें वर्णित हैं। इस ग्रन्थ में उनके सामान्य लक्षण ही कहते हैं। चन्द्रालोकमें अनुप्रासका सामान्य लक्षण नहीं कहा है, छेकानुप्रास आदि भेद ही कहे हैं, अतः साहित्यदर्पणोक्त अनुप्राससामान्यलक्षण कहते हैं —

अनुप्रास—(साहि० १०–३)—

'अनुप्रास. शब्दसाम्यं वैषम्येऽपि स्वरस्य यत्।'

स्वरस्य वैषम्येऽपि यत् शब्दसाम्यं सः अनुप्रास इत्यन्वयः। शब्दस्य वर्णपदैकदेशपदात्मकस्य साम्यं सादृश्येनावर्तनम्। स्वरस्य वैषम्ये भेदेपि व्यञ्जनमात्रसाम्यादनुप्रासो भवतीत्यर्थः। वैषम्येऽपीत्यपिना स्वरसाम्येऽप्यनुप्रासो भवतीति फलितम्। तथा च पदैकदेशपदात्मकशब्दसाम्यमूलकानुप्रासोदाहरणेषु स्वरसाम्यमपि सम्भवतीति। 'अनुप्रास' शब्दार्थश्च प्रकर्षेण आसः प्रासः अनुगतः प्रासोऽनुप्रासः, इति। रसभावाद्यनुगामिनी प्रकृष्टा रचनैवनुप्रास इति तत्त्वम्।

अनुप्रास—(साहित्य० १०-३) स्वरकी विषमता रहने पर भी शब्द अर्थात् वर्ण, पद और पदांशके साम्य अर्थात् सादृश्यको अनुप्रास कहते हैं। स्वरों की समानता हो चाहे न हो परन्तु अनेक व्यंजन जहाँ एकसे मिल जायँ वहाँ अनुप्रास अलङ्कार होता है। 'वैषम्येऽपि' यहाँ पर 'अपि' कहनेसे व्यंजनसाम्यके साथ ही साथ स्वरसाम्य होनेपर भी अनुप्रास होता है यह अर्थात् सिद्ध है। जहाँपर पदैकदेश किंवा पदका साम्य हो, वहाँ पर व्यंजनसाम्यके साथ स्वरसाम्य का भी उदाहरण मिलना सम्भव है। अनुप्रास शब्दका अक्षरार्थ इस प्रकार है रसभावादिके अनुगत प्रकृष्ट न्यासको अनुप्रास कहते हैं। यहाँ 'अनु' का अर्थ अनुगत और 'प्र' का प्रकृष्ट, एवं 'आस' का अर्थ न्यास है। रसकी अनु-

गामिनी प्रकृष्टरचनाका नाम अनुप्रास है। इससे यह भी सिद्ध हुआ कि रसके प्रतिकूल वर्णों की समता को अलङ्कार नहीं माना जाता।

उदाहरणं यथा शिशुपालवधे—(१-११)—

'निवर्त्य सोऽनुव्रजतः कृतानतीनतीन्द्रियज्ञाननिधिर्नभःसदः।
समासदत्सादितदैत्यसम्पदः पदं महेन्द्रालयचारु चक्रिणः॥

अत्र 'नतीनती' 'ननि' 'सदत् सादित' 'चारु च' इत्यादौ वर्णपदैकदेशानां साम्यादनुप्रासः। 'नतीनती' इत्यंशे स्वरसाम्यमन्यत्रम्। वैषम्यम्।

उदाहरण जैसे शिशुपालवध सर्ग १ श्लो० ११, यहाँ पर 'नतीनती' 'ननि' 'सादत् सादित' 'चारु च' इत्यादि स्थलोंमें वर्ण और पदंकदेशोंका साम्य होनेसे अनुप्रास अलङ्कार है। 'नतीनती' इस अंशमें स्वरसाम्य भी है, अन्यत्र केवल व्यंजनसाम्य है।

यमकम्—(चन्द्रालो० ५-८)—

'आवृत्तवर्णस्तबकं स्तवकन्दाङ्कुरं कवेः।
यमकं प्रथमा धुर्यमाधुर्यवचसो विदुः॥'

धुर्यमाधुर्यवचसः प्रथमाः कवेः स्तवकदांकुरमावृत्तवर्णस्तवकं यमकं विदुः इत्यन्वयः। धुर्यमाद्यं श्रेष्ठं वा माधुर्यं यस्य तादृशं वचो येषां तथाभूताः प्रथमाः प्राचीना विद्वांसः कवेः स्तवकन्दस्य स्तुतिरूपस्य कन्दस्य अङ्कुरं तदात्मकमावृत्तः पुनरुक्तो वर्णस्तवको वर्णसमूहो यत्र तादृशं यमकं विदुरित्यर्थः। भिन्नार्थकवर्णसमूहावृत्तिर्यमकमिति फलितम्। वीप्सादौ यमकत्ववारणाय भिन्नार्थकेति।

यमक—(चन्द्रा० ५-८)—अत्यन्त मधुर रचनायुक्त कविता करने वाले कवि लोग प्राचीन कवियों की प्रशंसाका मूलकारण, जहाँ वर्णसमूह की पुनरावृत्ति की जाती है उसको यमक अलङ्कार मानते हैं। अर्थात् भिन्न अर्थ वाले वर्णसमूहकी जिसमें आवृत्ति हो, वह यमक अलङ्कार कहा जाता है। वीप्सास्थलमें दोषवारण के लिये भिन्नार्थक यह विशेषण रखा गया है।

उदाहरणं चात्रैव यथा—'स्तवकं स्तवक,' 'मा धुर्यमाधुर्य' इत्यत्र।

उदाहरण भी इसी श्लोकमें हैं, जैसे—'स्तबकं' स्तवक 'मा धुर्यमाधुर्य, इत्यादि।

(यमकम्—साहि० १०-८)—

'सत्यर्थे पृथगर्थाया: स्वरव्यञ्जनसंहते: ।
क्रमेण तेनैवावृत्तिर्यमकं विनिगद्यते ॥'

अर्थे सति पृथगर्थाया: भिन्नार्थाया: स्वरव्यञ्जनसंहते: स्वरव्यञ्जन-समुदायस्य तेनैवक्रमेण पूर्वोपात्तक्रमेणैव आवृत्तिरावर्तनं यमकं कथ्यत इत्यर्थ: । यमकोदारणेषु पदद्वयमपि क्वचित्सार्थकं क्वचिन्निरर्थकं भवति; क्वचिदेकं पदं सार्थकमपरं निरर्थकं भवति इत्यत उक्तं सत्यर्थे इति । यत्रार्थोऽस्ति तत्र पृथगर्थाया इति योजनीयम् । तेनैव क्रमेणावृत्ति-रिति कथनेन 'दमो मोद:' इत्यादौ यमकत्वव्यावृत्ति: । एतच्च पादा-वृत्तिपदावृत्तीत्यादिभेदैर्बहुविधम् ।

यमक (साहि० १०-८)—साहित्यदर्पणमें यमकालंकारका लक्षण इस प्रकार कहा है—यदि अर्थवान् हो तो भिन्न अर्थवाले स्वरव्यंजन-समुदायकी उसी क्रमसे आवृत्ति को यमक कहते हैं । जिस समुदायकी आवृत्ति हो उसका एक अंश या सर्वांश यदि अनर्थक हो तो कोई आपत्ति नहीं किन्तु उसके किसी एक अंश या सर्वांशके सार्थक होने पर आवृत्तसमुदायको भिन्नार्थकताकी आव-श्यकता है । समानार्थक शब्दों की आवृत्तिको यमक नहीं कहा जाता । यमकके उदाहरणोंमें कहीं दोनों पद सार्थक होते हैं, कहीं दोनों निरर्थक, एवं कहीं एक सार्थक होता है और एक निरर्थक । इस कारण (सत्यर्थे) 'यदि अर्थ हो' यह अंश लक्षणमें रखा है । 'उसी क्रमसे' यह कहनेसे 'दमो मोद:' इत्यादि स्थलों में यमक नहीं होता । इस यमकालंकारके पदावृत्ति, पादावृत्ति,अर्थावृत्ति, श्लोकावृत्ति, इत्यादि अनेक भेद-प्रभेद हैं ।

उदाहरणं यथा रघुवंशे-(९–११)-'घनरवा नरवाहनसम्पद'इति । अत्र 'नरवा नरवा' इति वर्णसमुदायस्यावृत्ति: । उभयत्रापि निर-र्थकत्वम् ।

उदाहरण जैसे रघुवंशमें सर्ग ९-श्लो० ११ । यहाँ 'नरवा नरवा' यह वर्ण-समुदायकी आवृत्ति है । यहाँ दोनों पद निरर्थक हैं ।

इत्थमियं शब्दालंकारदिक् प्रदर्शिता । अत्र शब्दसन्निवेशविशेष-स्यैव चमत्कारावहत्त्वम् ।

इस प्रकार यह शब्दालंकारोंका दिग्दर्शन है। इन अलंकारोंमें शब्दसंनिवेशविशेषसे ही चमत्कार प्रतीत होता है।

अथाऽर्थालंकारनिरूपणे क्रमप्राप्ते सर्वालंकारजननीमुपमां सामान्यतो लक्षयामः—

अब अर्थालङ्कारोंका निरूपण क्रमप्राप्त है, उनमें सब अलंकारों की जननी ऐसा उपमा का सामान्य लक्षण कहते हैं,—

उपमा (चन्द्रा० ५-११)—

'उपमा यत्र सादृश्यलक्ष्मीरुल्लसति द्वयोः।
हृदये खेलतोरुच्चैस्तन्वंगोस्तनयोरिव ॥'

यत्र काव्ये द्वयोर्भिन्नयोरुपमापमेययोः सादृश्लक्ष्मीः चमत्कारजनकं सादृश्यमुल्लसति वाच्यं भवति, तत्र उपमालंकार इत्यर्थः। द्वयोरित्युक्त्या वक्ष्यमाणानन्वयालंकारव्यावृत्तिः, तत्रैकस्यैवोपमानोपमेयत्वात् उल्लसतीत्यनेनालंकारध्वनिव्यावृत्तिः। लक्ष्मीरितिकथनेन चमत्कारानाधायकवस्तुत्वप्रमेयत्वादिना सादृश्ये उपमालंकारव्यावृत्तिः।

उपमा (चन्द्रा० ५-११)-जिस काव्यमें दो भिन्न उपमानोपमेय पदार्थों का चमत्कारजनक सादृश्य वाच्य हो, अर्थात् शब्दद्वारा कथित हो वहांपर उपमालंकार होता है 'दो भिन्न पदार्थोंका' ऐसा कहनेसे अनन्वय अलंकार की व्यावृत्ति होता है। वहांपर उपमान और उपमेय एक ही होता है। 'सादृश्य वाच्य हो ऐसा कहनेसे उपमालंकारध्वनिकी व्यावृत्ति होती है। 'चमत्कारजनक सादृश्य' ऐसा कहनेसे वस्तुत्व प्रमेयत्व आदि धर्मोंके द्वारा जहांपर सादृश्य हो वहांपर वह सादृश्य चमत्कारी न होने से उपमालंकार नहीं होता।

उत्तरार्द्धमुदाहरणम्। नायिकाया वक्षःस्थले विराजमानयोरुन्नतयोः स्तनयोः हृदये खेलनरूपसामान्यधर्मेण सादृश्यवाचिना इवशब्देन च प्रयुक्तेन सादृश्यं भवतीत्युपमालंकारः।

लक्षणका उत्तरार्द्ध ही उदाहरण है नायिकाके वक्षःस्थलमें विराजमान उन्नत स्तनोंमें हृदयखेलनरूप सामान्य धर्मके द्वारा सादृश्य है। सादृश्यवाचक 'इव' शब्दका प्रयोग होने के कारण यहांपर उपमालंकार होता है।

उपमा—(साहि० १०-१४)—

'साम्यं वाच्यमवैधर्म्यं वाक्यैक्य उपमा द्वयोः ।'

वाक्यैक्ये एकस्मिन्नेव वाक्ये द्वयोः पदार्थयोरर्थादुपमानोपमेययोः अवैधर्म्यं वैधर्म्यरहितं वाक्यमिवादिप्रतिपादितं साम्यमुपमेत्यर्थः । रूपकादौ साम्यं व्यङ्ग्यं भवति, व्यतिरेके वैधर्म्यमप्युच्यते, उपमेयोपमायां वाक्यद्वयम्, अनन्वये त्वेकस्यैव साम्योक्तिरिति रूपकव्यतिरेकोपमेयोपमाऽनन्वयेभ्योऽस्याः पार्थक्यम् ।

उपमा (साहि० १०-१४) एक ही वाक्य में दो पदार्थों का अर्थात् उपमान और उपमेयका वैधर्म्य-रहित, और वाच्य अर्थात् सादृश्यवाचक 'यथा', 'इव' आदि शब्दों द्वारा प्रतिपादित सादृश्य जहाँ हो वहाँ उपमा नामक अलंकार होता है । रूपक आदि अलंकारोंमें साम्य व्यंग्य होता हैं, व्यतिरेक अलंकार में वैधर्म्य होता है, उपमेयोपमा में दो वाक्य होते है, अनन्वय अलंकार में उपमान और उपमेय एक ही होता है, अतः रूपक, व्यक्तिरेक, उपमेयोपमा और अनन्वय इन अलंकारों से उपमालंकार का पार्थक्य सिद्ध होता है ।

उदाहरणं यथा रघुवंशे–(५-७५)–

इति विरचितवाग्भिर्वन्दिपुत्रैः कुमारः
सपदि विगतनिद्रस्तल्पमुज्झाञ्चकार ।
मदपटुनिनदद्भिर्बोधितो राजहंसैः
सुरगज इव गाङ्गं सैकतं सुप्रतीकः ॥

अत्र पूर्वोत्तरार्द्धाभ्यां वाक्यद्वयम् सुरगज उपमानम्, कुमार उपमेयम् । निद्रापगमपूर्वकस्तल्पत्यागः सामान्यधर्मः । इवशब्दश्च सादृश्यवाचक इति पूर्णोपमोदाहरणम् ।

उदाहरण रघुवंश ५ श्लो० ७५ । तात्पर्य–उक्त प्रकारसे वंदिपुत्रोंके प्राभातिक मंगलगान द्वारा जगाये हुए कुमारने तत्काल ही शयनका त्याग किया, जैसे सुप्रतीक नामक सुरगज राजहंसों के मधुर शब्दोंसे जागकर गंगातीर के वालुकामय प्रदेश रूपी शय्याका त्याग करता है । इस उदाहरणमें पूर्वार्धं और उत्तरार्द्ध से दो वाक्य माने गये हैं । यहाँ पर सुरगज उपमान और कुमार उपमेय है । जागकर शय्या का त्याग करना सामान्य धर्म है :

'इव' शब्द सादृश्यका वाचक है, अतः यहाँ पर उपमान, उपमेय, साधारण धर्म और सादृश्यवाचक उक्त होने से यह पूर्णोपमाका उदाहरण है।

अनन्वयः—(चन्द्रा० ५-१२)—

उपमानोपमेयत्वे यत्रैकस्यैव जाग्रतः।
इन्दुरिन्दुरिवेत्यादौ भवेदेवमनन्वयः॥'

यत्र यस्मिन् वाक्ये एकस्यैव पदस्य वाक्यस्य वा उपमानत्वमुपमेयत्वं च भवति तत्रानन्वयो भवेदित्यर्थः। उपमानोपमेयसाधारणधर्मैक्यविशिष्टा यत्रोपमितिक्रिया तत्रानन्वय इति फलितम्।

अनन्वय (चन्द्रा० ५-१२)—जिस वाक्यमें एक ही पदको अथवा वाक्य को उपमान और उपमेय भी बनाया जाय वहाँ अनन्वय नामका अलंकार होता है। उपमान, उपमेय और साधारणधर्मका ऐक्य रहते हुए जहाँ एक वाक्यमें सादृश्यप्रतीति होती है वहाँ अनन्वयालंकार होता है, यह फलितार्थ है।

उदाहरणमाह-इन्दुरिन्दुरिवेति। अत्रोपमानमुपमेयं च इन्दुरेव, श्रीमत्त्वं साधारणधर्मः। इन्दोः सदृशान्तरं नास्तीति भावः।

उदाहरण इन्दुरिन्दुरिवेति। चन्द्र चन्द्र ही के समान है। इस वाक्यमें इन्दु ही उपमान और उपमेय है। साधारण धर्म श्रीमत्त्व है। चन्द्र के समान सुन्दर दूसरा नहीं है यह तात्पर्य है।

अनन्वयः—(साहि० १०-२६)

'उपमानोपमेयत्वमेकस्यैव त्वनन्वयः।'

एकस्मिन् वाक्ये एकस्यैव वस्तुन उपमानत्वमुपमेयत्वं च भवति चेत् तदा अनन्वयालंकार इत्यर्थः।

अनन्वय (साहि० १०-२६)-एक वाक्यमें एक ही वस्तु को यदि उपमान और उपमेय भी बनाया जाय तो वहाँ अनन्वय नामका अलंकार होता है। उदाहरणं यथा—

'रामरावणयोर्युद्धं रामरावणयोरिव।'

यथा वा पण्डितराजकृतायां गङ्गालहर्यां (श्लो० १७) 'त्वमिव जननि त्वं विजयसे' इति। एकस्यैव सादृश्यप्रतियोगित्वेन सादृश्यानुयोगित्वेन चान्वयासम्भवादनन्वय इत्यन्वर्थमलंकारनाम।

उदाहरण जैसे—रामरावण का युद्ध रामरावण के समान था। इससे यह सिद्ध हुआ कि रामरावण युद्धके सदृश दूसरा युद्ध हुआ हो नहीं। दूसरा उदाहरण जैसे पण्डितराजकृत गंगालहरीमें (श्लोक ७) 'हे जननि तुम जैसी तुम ही हो', अर्थात् गंगाके समान पाप दूर करनेवाला दूसरा कोई नहीं है। जिसका सादृश्य हो वह सादृश्यप्रतियोगी कहा जाता है, जिससे सादृश्य हो वह सादृश्यानुयोगी कहा जाता है। सादृश्यका प्रतियोगी और अनुयोगी एक नहीं हो सकता। जहाँ पर एक ही को सादृश्यका प्रतियोगी और अनुयोगी बनाया जाता है वहाँ पर इस प्रकार अन्वय न होनेके कारण अनन्वय नामका अन्वर्थं अलंकार होता है। लोकव्यवहार में-'आप जैसे आप ही हैं' यह अनन्वय का उदाहरण है

रूपकम्—(चन्द्रा ५--१८)—

'यत्रोपमानचित्रेण सर्वथाऽप्युपरज्यते।
उपमेयमयी भित्तिस्तत्र रूपकमिष्यते॥'

यत्र यस्मिन् वाक्ये उपमानरूपेण चित्रेण उपमेयात्मिका भित्तिः सर्वथा सर्वात्मना उपरज्यते उपरक्ता भवति तत्र रूपकनामालंकार इत्यर्थः। उपमेयस्योपमानात्मना निरूपणाद्रूपकमित्यलंकारनाम। यत्रोमानोपमेययोर्भेदो न प्रतीयते तद्रूपकमिति भावः।

रूपक—(चन्द्रा० ५-१८)—जिस वाक्यमें उपमानरूपी चित्रसे उपमेयरूपी भित्ति पूर्णतया रंग दी जाती है वहाँ रूपक नामका अलंकार होता है। उपमेयकी उपमान रूपसे रूपित करनेके कारण इस अलंकारका 'रूपक' यह यथार्थ नाम हैं। जहाँ उपमान और उपमेयमें भेदप्रतीति नहीं होती वहाँ रूपकालंकार होता है, यह फलितार्थ है।

लक्षणश्लोक एवोदाहरणमपि यथा-उपमानमेव चित्रम्, उपमेयमय्येव भित्तिरित्यत्र।

लक्षणश्लोक में ही उदाहरण भी है। जैसे—'उपमानमेव चित्रम्' उपमेयमयी भित्तिः', यहाँपर उपमान और चित्रकी तथा उपमेय और भित्तिकी अभेदप्रतीति है, अतः ये दोनों रूपकके उदाहरण हे।

रूपकम्—(साहि० १०-१८)—

'रूपकं रूपितारोपो विषये निरपह्नवे।'

निरपह्नवे अर्थात् निषेधरहिते विषये उपमेये रूपितस्योपमानस्यारोपस्तत्त्वेन प्रतीतिरेव रूपकमित्यर्थः ।

रूपक—(साहि० १०-२८)—निषेधवाचक शब्दका प्रयोग न रहते हुए जहाँ पर उपमेयमें उपमानका आरोप हो, अर्थात् उपमेयकी उपमान रूपसे ही प्रतीति हो, वहाँ रूपकलंकार होता है ।

उदाहरणं यथा 'मुखं चन्द्रः' इति । अत्र उपमेयस्य मुखस्य उपमानचन्द्रात्मना रूपणाच्चन्द्रत्वेनैव प्रतीतिरिति रूपकालंकारः । उदाहरणान्तरं यथा शिशुपालवधे—(२-३) ।

'जाज्वल्यमाना जगतः शान्तये समुपेयुषी ।
व्यद्योतिष्ट सभावेद्यामसौ नरशिखित्रयी ।'

अत्र श्रीकृष्णबलरामोद्धवेषु शिखित्वारोपात्तेषां शिखिरूपेणैव बोधो भवति, ततश्च 'जाज्वल्यमाना' व्यद्योतिष्ट' इत्यादिपदानां सार्थक्यं च भवति ।

उदाहरण जैसे—मुख चन्द्र है । यहाँ पर उपमेय मुखमें उपमान चन्द्रका आरोप करने से मुखकी चन्द्ररूपसे ही प्रतीति होती है, अतः यहाँ रूपकालंकार है । दूसरा उदाहरण शिशुपावधके द्वितीय सर्गमें श्लोक ३ । जैसे—'असौ नरशिखित्रयी' यहाँ पर श्रीकृष्ण बलराम और उद्धव इस नरत्रयी में 'शिखी' अर्थात् अग्नि का आरोप करने से इस नरत्रयीका अग्निरूपसे ही बोध होता है । अत एव 'जाज्वल्यमाना' 'व्यद्योतिष्ट' इन पदोंकी सार्थकता है ।

उल्लेखः— (चन्द्रा० ५–२३)—

'बहुभिर्बहुधोल्लेखादेकस्योल्लेखिता मता ।
स्त्रीभिः कामः प्रियैश्चन्द्रः कालः शत्रुभिरैक्षि सः ॥'

यत्रैकस्य वस्तुनो बहुकर्तृको बहुप्रकारक उल्लेखो भवति तत्रोल्लेखालंकार इत्यर्थः ।

उल्लेखः—(चन्द्रा० ५-२३)–जहाँ पर एक पदार्थका अनेक व्यक्तियों द्वारा अनेक प्रकारसे उल्लेख किया जाता है वहाँ उल्लेख नामका अलंकार होता है ।

उदाहरति—स्त्रीभिरिति । अत्रैक एव भगवान् श्रीकृष्णः सौन्दर्यातिशयात् स्त्रीभिः काम इति सम्भावितः, आह्लादकत्वात् प्रियैर्बन्धु-

भिश्चन्द्र इति सम्भावितः, उग्रत्वात् शत्रुभिः काल इति ऐक्षि दृष्ट इत्यर्थः अत्रैकस्यैव श्रीकृष्णस्य स्त्रीप्रियशत्रुकर्तृकः कामचन्द्रकालत्वप्रकारकोल्लेख इत्युल्लेखालंकारोदाहरणमिदम् ।

उदाहरण जैसे—एक पदार्थ-भगवान् श्रीकृष्णको उनका सौन्दर्य देखकर स्त्रियों ने कामदेवरूप में देखा, प्रियवन्धुओंने उनकी स्वाभाविक आह्लादकता देखकर उनको चन्द्ररूपमें देखा, शत्रुओंने उनकी उग्रता तथा क्रोध देखकर उनको साक्षात् काल रूपमें ही देखा। यहाँ पर एक पदार्थ श्रीकृष्णका स्त्री, प्रिय और शत्रु रूप अनेक व्यक्तियों द्वारा काम, चन्द्र और काल रूपसे अनेक प्रकार उल्लेख किया गया है, अतः यह उल्लेखालंकार का उदाहरण है।

उल्लेख : —(साहि० १०–३७) —

'क्वचिद्भेदाद् ग्रहीतॄणां विषयाणां तथा क्वचित् ।
एकस्यानेकधोल्लेखो यः स उल्लेख उच्यते ॥'

ग्रहीतॄणां ज्ञातॄणां भेदात् वाहुल्येन तथा विषयाणां हेतूनां च वाहुल्येन एकस्य वस्तुनो यत्र वहुप्रकारक उल्लेखो भवति तत्रोल्लेखालंकार इत्यर्थः ।

उल्लेख (साहि० १०-३७) बोद्धा अनेक होनेसे तथा हेतु भी अनेक होनेसे एकही वस्तुका जहाँ अनेक प्रकारसे उल्लेख होता है वहाँ उल्लेखालंकार होता है।

उदाहरणं यथा—

प्रिय इति गोपवधूभिः शिशुरिति वृद्धैरधीश इति देवैः ।
नारायण इति भक्तैर्ब्रह्मेत्यग्राहि योगिभिर्देवः ॥

अत्रैकस्य वस्तुनो भगवतः कृष्णस्य गोपवधूवृद्धदेवभक्तयोगिरूपग्रहीतृभेदात् प्रियशिशुवधीशनारायणब्रह्मत्वेनोल्लेख इत्युल्लेखालंकारोदाहरणमिदम् ।

उदाहरण जैसे—एक वस्तु अर्थात् भगवान् श्रीकृष्णको गोपस्त्रियोंने प्रियरूपसे, वृद्धों ने वालकरूप से, देवोंने अधीश्वररूपसे, भक्तोंने नारायणरूपसे और योगियों ने ब्रह्मरूपसे ग्रहण किया। यहाँपर एक वस्तु भगवान् श्रीकृष्ण का गोपवधू, वृद्ध, देव, भक्त और योगि रूप बोद्धाओंके भेदके कारण प्रिय, शिशु,

अधीश, नारायण और ब्रह्मरूप अनेक प्रकारोंसे उल्लेख किया गया है, अतः यह उल्लेखालंकार का उदाहरण है।

अपह्नुति .—(चन्द्रा० ५–२४)

'अतथ्यमारोपयितुं तथ्यापास्तिरपह्नुतिः ।
नायं सुधांशुः किन्तर्हि व्योमगंगासरोरुहम् ॥'

यत्रासत्यधर्मारोपं कर्तुं सत्यधर्मस्यापलापः क्रियते तत्रापह्नुतिर्नामालंकारः।

अपह्नुति (चन्द्रा० ५–२४)—जहाँ पर किसी असत्य धर्मका आरोप करने के लिये वस्तुगत सत्यधर्मका अपलाप = निषेध = अस्वीकार किया जाता है वहाँ अपह्नुति नामका अलंकार होता है।

उदाहरति—नायमिति। अत्र सुधांशौ व्योमगङ्गासरोरुहत्वरूपासत्यधर्मारोपाय सुधांशुगतवास्तविकसुधांशुरूपधर्मस्य 'नायं सुधांशुः' इत्युक्तेरपलापः कृतः इत्यपह्नुतेरुदाहरणमिदम्।

उदाहरण जैसे—चन्द्रमें आकाशगङ्गाकमलत्वका आरोप करनेके लिये चन्द्रगत सत्य चन्द्रत्वका निषेध किया है। (नायं सुधांशुः) 'यह चन्द्र नहीं है किन्तु आकाशगङ्गा का कमल है।' यह अपह्नुति अलंकारका उदाहरण है।

अपह्नुतिः-(साहि० १०-३८)—

'प्रकृतं प्रतिषिध्यान्यस्थापनं स्यादपह्नुतिः ।'

प्रकृतस्य उपमेयस्य प्रतिषेधं कृत्वा अन्यस्य उपमानस्य स्थानमारोपकरणमपह्नुतिरित्यर्थः।

अपह्नुतिः--(सा० १०-३८)—प्रकृत अर्थात् उपमेयका प्रतिषेधकर अन्य अर्थात् उपमानका स्थापन आरोप करने से अपह्नुति नामका अलंकार होता है।

उदाहरणं यथा—

द्विजपतिग्रसनाहितपातकप्रभवकुष्ठसितीकृतविग्रहः ।
विरहिणीवदनेन्दुजिघृक्षया स्फुरति राहुरयं न निशाकरः ॥

अत्र पुरः स्फुरति शशिबिम्बे द्विजराजचन्द्रग्रसनजन्यपातकोत्पन्नकुष्ठरोगसितशरीरराहुत्वस्यारोपः । न निशाकर इत्युक्तेश्चन्द्रत्वस्य प्रतिषेधश्चेत्यपह्नुतेरुदाहरणमिदम्।

उदाहरण जैसे–उदित चन्द्रको देखकर कोई कहता है–'द्विजराज चन्द्रको ग्रास करनेके पापसे उत्पन्न श्वेतकुष्ठरोगसे जिसका सारा शरीर श्वेत हो गया है ऐसा यह राहु विरहिणी स्त्रियोंके मुखचन्द्रको ग्रास करने की इच्छासे आया है, यह चन्द्र नहीं है।' यहाँ पर सामने देख पड़नेवाले चन्द्रविम्बमें द्विजराज चन्द्रको ग्रास करने से उत्पन्न श्वेतकुष्ठरोग द्वारा जिसका शरीर श्वेत हो गया है ऐसे राहुगत राहुत्वका आरोप किया है। 'न निशाकरः' कहनेसे चन्द्रत्वका निषेध भी है अतः यह अपह्नुतिका उदाहरण है।

उत्प्रेक्षा—चन्द्रा० ५—२९, ३०)

> उत्प्रेक्षोन्नीयते यत्र हेत्वादिर्निह्नुतिं विना।
> त्वन्मुखश्रीकृते नूनं पद्मैर्वैरायते शशी॥
> 'इवादिकपदाभावे गूढोत्प्रेक्षां प्रचक्षते।
> यत्कीर्तिविभ्रमश्रान्ता विवेश स्वर्गनिम्नगाम्॥'

यत्र निह्नुतिं प्रतिषेधं विना हेत्वादिः आदिपदात् फलवस्तुनी संगृह्येते। तथा च यत्र वाक्ये प्रतिषेधमकृत्वैव वस्तुनो वस्त्वन्तरतादात्म्यं सम्भाव्यते, एवमहेतोस्तद्धेतुत्वम्. अफलस्य च तत्फलत्वं सम्भाव्यते तत्र. क्रमेण वस्तूत्प्रेक्षा, हेतूत्प्रेक्षा, भवन्तीत्यर्थः।

उत्प्रेक्षा (चन्द्रा० ५-२९-३०)—जहाँपर प्रतिषेधके बिना ही एक वस्तुमें दूसरी वस्तुकी सम्भावना की जाती हो, इसी प्रकार जो जिस कार्यका हेतु नहीं है उसमें उस कार्यको हेतुकी सम्भावना की जाती हो, जो जिसका फल नहीं है उसमें तत्फलत्वकी सम्भावना की जाती हो वहाँपर क्रमसे वस्तूत्प्रेक्षा, हेतूत्प्रेक्षा, और फलोत्प्रेक्षा नामसे उत्प्रेक्षालङ्कारके तीन भेद होते हैं।

भेदत्रयस्यैकमेवोदाहरणमाह—त्वन्मुखश्रीति। अत्र प्रथमतः 'पद्मैर्वैरायते शशी' इत्यंशे वस्तुतः पद्मवैरिणि शशिनि पद्मवैरित्वसम्भावनात्–वस्तूत्प्रेक्षा, एवं स्वाभाविके पद्मचन्द्रविरोधे कान्तामुखश्रीप्राप्तिहेतुकत्व-सम्भावनात् हेतूत्प्रेक्षा, चन्द्रपद्मविरोधस्याफले कान्तामुखश्रीलाभे तत्फलकत्वसम्भावनात् फलोत्प्रेक्षा चेति तिस्रोऽप्युत्प्रेक्षा एकेनोदाहरणेन दर्शिताः। उत्प्रेक्षाव्यञ्जकाश्च 'मन्ये' 'शङ्के' 'ध्रुवम्' इत्यादयः। तथा चोक्तम्–

'मन्ये शङ्के ध्रुवं प्रायो नूनमित्येवमादयः।
उत्प्रेक्षा व्यज्यते शब्दैरिवशब्दोऽपि तादृशः ॥'

तीनों भेदोंका उदाहरण एक ही है। जैसे—

'त्वन्मुखश्रीकृते नूनं पद्मैर्वैरायते शशी।'

यहाँ पर 'पद्मैर्वैरायते शशी' इस अंशमें—वास्तवमें पद्मोंके अवैरी चन्द्रमें पद्मवैरित्वकी सम्भावना की है अतः यह वस्तूत्प्रेक्षाका उदाहरण है। इसी प्रकार स्वाभाविक पद्मचन्द्रविरोधमें कान्तामुखश्रीप्राप्तिहेतुताकी सम्भावना करनेसे हेतूत्प्रेक्षा चन्द्रपद्मविरोधके अफलभूत कान्तामुखश्रीलाभमें चन्द्रपद्म-विरोधफलकत्वकी सम्भावना होने से फलोत्प्रेक्षा भी है, अतः त्रिविध उत्प्रेक्षा का यह एक ही उदाहरण है। मन्ये, शङ्के, ध्रुवम् इत्यादि उत्प्रेक्षाव्यञ्जक हैं। जैसे कहा है मन्ये, शङ्के, ध्रुवम्, प्रायः, नूनम् और इव इत्यादि शब्द उप्रेक्षा-व्यञ्जक है। इन उत्प्रेक्षाव्यञ्जक शब्दोंके प्रयोगमें वाच्योत्प्रेक्षा या अगूढो-त्प्रेक्षा कही जाती है।

गूढोत्प्रेक्षामाह—इवादीति। इवादिकानां पूर्वोक्तानामुत्प्रेक्षाव्यञ्ज-कानामभावे गूढोत्प्रेक्षामालङ्कारिकाः कथयन्तीत्यर्थः।

पूर्वोक्त उत्प्रेक्षाव्यजक इवादि का प्रयोग न होनेसे गूढोत्प्रेक्षा कही जाती है।

गूढोत्प्रेक्षामुदाहरति—यत्कीर्तिरिति। अत्राऽपि त्रिविधा गूढोत्प्रेक्षा-एकस्मिन्नुदाहरणे यथा—वस्तुतः स्वर्गनिम्नगाऽनवगाहिकायां कीर्तौ स्वर्ग-निम्नगावगाहकर्तृत्वसम्भावनाद्वस्तूत्प्रेक्षा, स्वर्गनिम्नगावगाहस्याफलहेतु-भूते विभ्रमश्रान्तत्वे तद्धेतुत्वसम्भावनाद्धेतूत्प्रेक्षा विभ्रमश्रान्तत्वस्याफलभूते स्वर्गनिम्नगावगाहे तत्फलत्वसम्भावनात् फलोत्प्रेक्षा चेति। सर्वा एवैता उत्प्रेक्षाव्यञ्जकेवादिप्रयोगाभावात् गूढोत्प्रेक्षा एव।

गूढोत्प्रेक्षाका उदाहरण जैसे—जिस राजाकी कीर्ति मानो घूमती हुई थक-कर स्वर्गङ्गामें नहानेके लिए उतर पड़ी। इस उदाहरणमें भी तीनों प्रकार की गूढोत्प्रेक्षा होती है। जैसे—वास्तवमें स्वर्गङ्गामें स्नान न करनेवाली कीर्तिमें स्वर्गङ्गा-स्नानकर्तृत्वकी सम्भावना करनेसे वस्तूत्प्रेक्षा होती है।

स्वर्गङ्गा स्नानके अहेतु विभ्रमश्रान्तत्वमें तद्धेतुत्वकी सम्भावना करनेसे हेतू-त्प्रेक्षा होती है, इसी प्रकार विभ्रमश्रान्तिके अफलभूत स्वर्गङ्गास्नानमें तत्फलत्व

की सम्भावना करने से फलोत्प्रेक्षा होती है इन तीनों उत्प्रेक्षाओं में उत्प्रेक्षा-व्यञ्जक इवादिशब्दों का प्रयोग न होने से ये तीनों गूढोत्प्रेक्षा ही है।

उत्प्रेक्षा—(साहि० १०-४०-४१)—

भवेत् सम्भावनोत्प्रेक्षा प्रकृतस्य परात्मना।
वाच्या प्रतीयमाना सा प्रथमं द्विविधा मता॥
वाच्येवादिप्रयोगे स्यादप्रयोगे परा पुनः।

प्रकृतस्य अर्थादुपमेयस्य परात्मना अर्थादुपमात्मना सम्भावना उत्प्रेक्षेत्यर्थः। उपमेयस्योपमानतादात्म्यसम्भावनमुत्प्रेक्षेति भावः। सा द्विविधा, वाच्या, प्रतीयमाना च। इवादीनां प्रयोगे वाच्या।

उत्प्रेक्षा—(साहि० १०-४०-४१)—प्रकृत अर्थात् उपमेयकी पर अर्थात् उपमान रूप से सम्भावना की जावे तो उत्प्रेक्षालङ्कार होता है। उपमेय में उपमानतादात्म्यकी सम्भावना करने से उत्प्रेक्षा होती है, यह फलितार्थ है। वह उत्प्रेक्षा दो प्रकार की है वाच्या और प्रतीयमाना इन भेदों से। उत्प्रेक्षा-व्यञ्जक इवादि के प्रयोग में—

इवादीनामप्रयोगे च प्रतीयमाना, सैव गूढोत्प्रेक्षेत्यर्थः। अत्राऽपि पूर्ववदेव वस्तुहेतुफलात्मत्वेनोत्प्रेक्षात्रैविध्यमवसेयम्।

वाच्योत्प्रेक्षा और इवादिके प्रयोग न करने से प्रतीयमानोत्प्रेक्षा होती है। प्रतीयमानोत्प्रेक्षाको ही गूढोत्प्रेक्षा भी कहते हैं। पूर्ववत् यहाँ भी वस्तु, हेतु और फल इन भेदों से तीन प्रकार की उत्प्रेक्षा होती है।

काव्यलिङ्गम्—(चन्द्रा० ५-३८)—

'स्यात् काव्यलिङ्गं वागर्थो नूतनार्थसमर्थकः।
जितोऽसि मन्द कन्दर्प! मच्चित्तेऽस्ति त्रिलोचनः'॥

यत्र वागर्थः शब्दार्थः पदार्थवाच्यार्थान्तररूपः नूतनस्य कस्याप्यर्थस्य समर्थकः सम्पादकः स्यात् तत्र काव्यलिङ्गं नामालङ्कारो भवतीत्यर्थः।

काव्यलिङ्ग (चन्द्रा० ५-३८)—जहाँ पर कोई पदार्थ अथवा वाक्यार्थ किसी नूतन अर्थका समर्थक होता है वहाँ काव्यलिङ्ग नामका अलङ्कार होता है

उदाहरति—जितोऽसीति । अत्र हे मन्द ! जड ! कन्दर्प ! काम जितोऽसि मयेतिवाक्यं हेत्वनुपन्यासे साकाङ्क्षमस्ति । तत्र हेतुमाह-'मच्चित्तोऽस्ति त्रिलोचनः' इति । यस्माद्धेतोर्मच्चित्ते त्रिलोचनः तृतीय नेत्रेण कामदाहकः शिवोऽस्ति तस्मात्, इति हेतूपन्यासः । अत्र 'मच्चित्तेऽस्ति त्रिलोचनः' इति वाक्यार्थरूपः शब्दार्थः 'जितोऽसि मन्दकन्दर्प', इति वाक्यार्थस्य समर्थकः स्मरहरसन्निधाने स्मरप्रसरासम्भवात्, इति भावः ।

उदाहरण जैसे हे मूर्ख ! काम ! मैंने तुझे जीत लिया है, क्योंकि मेरे चित्तमें त्रिनेत्र (तृतीय नेत्र से कामदेवका दाह करने वाले) महादेवजी विद्यमान है ।' यहाँपर 'हे मूर्ख ! काम ! मैंने तुझे जीत लिया है' यह वाक्य किसी हेतुके उपन्यासके विना साकांक्ष है, अतः हेतु कहते हैं— 'मेरे चित्तमें त्रिलोचन महादेवजी विद्यमान हैं ।' यहाँपर जिस कारणसे तृतीय नेत्रसे कामदाह करने-वाले त्रिनेत्र महादेवजी मेरे चित्तमें विद्यमान है उस कारणसे' यह हेतूपन्यास हुआ । यहाँपर 'मच्चित्तेऽस्ति त्रिलोचनः' यह वाक्यार्थरूप शब्दार्थ 'जितोऽसि मन्द कन्दर्प' इस वाक्यार्थ का समर्थक है । कामदाहक शिवजी के सन्निधान में कामदेवका प्रसार होना असम्भव है यह तात्पर्य है ।

काव्यलिङ्गम्— (साहि० १०-६२)

'हेतोर्वाक्यपदार्थत्वे काव्यलिङ्गं निगद्यते' ।

यत्र पदार्थो वाच्यार्थो वा कस्यापि हेतुर्भवति तत्र काव्यलि ङ्गनाम अलङ्कारो भवतीत्यर्थः ।

काव्यलिङ्ग (साहि० १०-६२)—जहाँपर पदार्थ किंवा वाक्यार्थ किसी का हेतु हो, वहाँपर काव्यलिङ्ग नाम का अलङ्कार होता है ।

उदाहरणं यथाऽभिज्ञानशाकुन्तले विरहिणो दुष्यन्तस्योक्तौ-

तव कुसमशरत्वं शीतरश्मित्वमिन्दो-
द्वयमिदमयथार्थं दृश्यते मद्विधेषु ।
विसृजति हिमगर्भैरग्निमिन्दुर्मयूखै-
स्त्वमपि कुसुमबाणान् वज्रसारीकरोषि ॥

अत्र यस्माद् हेतोरिन्दुर्हिमगर्भैर्मयूखैरग्निं विसृजति, त्वमपि

कुसुमबाणान् वज्रसारीकरोषि, तस्माद्धेतोर्मद्विधेषु इन्दोः शीतरश्मित्वं तव कुसुमशरत्वं च, इदं द्वयमयथार्थं दृश्यते इति पूर्वार्द्धवाक्यार्थानामुत्तरार्द्धवाक्यार्था हेतुभूता इति •वाक्यार्थहेतुककाव्यलिङ्गोदाहरणमिदम् ।

उदाहरण जैसे अभिज्ञानशाकुन्तल में विरही दुष्यन्तकी उक्ति। शकुन्तलाके विरहसे दुःखी राजा दुष्यन्त चन्द्र तथा कामसे कहता है—'हे काम ! तुम जो पुष्पवाण कहे जाते हो, और हे चन्द्र ! तुम जो शीतकिरण कहे जाते हो, ये दोनों वातें मेरे ऐसे (विरही) लोगोंके बारेमें झूठ मालूम पड़ती हैं। क्योंकि यह चन्द्र अपने हिमयुक्त किरणोंसे अग्निवृष्टि कर रहा है और हे कामदेव ! तुम भी अपने पुष्पवाणोंको वज्रके समान कर रहे हो।' यहाँ पर पूर्वार्द्धवाक्यार्थ के उत्तरार्द्धवाक्यार्थ हेतु हैं। पूर्वार्द्ध वाक्यों द्वारा चन्द्रका शीतरश्मित्व और कामका पुष्पवाणत्व झूठा है, ऐसा कहा गया है, उत्तरार्द्धवाक्यों द्वारा इसीका समर्थन किया गया है, अतः यह वाक्यार्थहेतुक काव्यलिङ्गका उदाहरण है।

अतिशयोक्तिः—रूपकातिशयोक्तिर्वा (चन्द्रा० ५–४४)—

'रूपकातिशयोक्तिश्चेद् रूप्यं रूपकमध्यगम् ।
पश्य नीलोत्पलद्वन्द्वान्निःसरन्ति शिताः शराः ॥'

यत्र रूप्यमुपमेयं रूपकस्योपमानस्य मध्यगम् उदरमध्यगतं भवेत् अर्थात् उपमानेनैव यत्रोपमेयस्य प्रतीतिर्भवति तत्रातिशयोक्तिः रूपकातिशयोक्तिरिति वाऽलङ्कारो भवतीत्यर्थः ।

अतिशयोक्ति या रूपकातिशयोक्ति (चन्द्रा० ५–४४)—जहाँ पर रूप्य अर्थात् उपमेय रूपक अर्थात् उपमानके अन्तर्भूत हो अर्थात् जहाँ पर उपमानके द्वारा ही उपमेयकी प्रतीति होती हो, वहाँपर अतिशयोक्ति अथवा रूपकातिशयोक्ति नाम अलङ्कार होता है।

उदाहरति—पश्येति । नीलोत्पलद्वन्द्वात् शिताः शरा निःसरन्ति पश्य इत्यन्वयः । नायिकायाः कटाक्षान् वर्णयतः कस्यापि स्वसुहृदं प्रत्युक्तिः । नीलोत्पलद्वन्द्वात् तत्त्वेनाध्यवसितात् नेत्रयुगलात् शिताः शराः तत्त्वेनाध्यवसिताः कटाक्षा निःसरन्ति निष्क्रामन्तीत्यर्थः । अत्रोपमेयं नायिकानेत्रयुगलं कटाक्षाश्च उपमानं नीलोत्पलद्वन्द्वं तीक्ष्णाः शराश्च । नीलोत्पलद्वन्द्वात्तीक्ष्णबाणनिःसरणकथनेन उपमेय-

भूतं नेत्रयुगलं कटाक्षाश्च उपमानभूतनीलोत्पलद्वयतीक्ष्णबाणान्तर्भूताः प्रतीयन्ते। नीलोत्पलद्वन्द्वेन नेत्रद्वयप्रतीतिः तीक्ष्णबाणैश्च कटाक्षप्रतीतिर्भवतीति रूपकातिशयोक्तेरतिशयोक्तेर्वोदाहरणमिदम्।

उदाहरण जैसे—'देखो तो मित्र! दो नीलकमलोंसे तीखे-तीखे वाण निकल रहे हैं।' किसी नायिकाके कटाक्षोंका वर्णन करता हुआ कोई रसिक अपने मित्र से कहता है—दो नीलकमलोंसे अर्थात् दो नीलकमलोंके समान दो नेत्रोंसे तीखे-तीखे बाण अर्थात् तीक्ष्ण बाणोंके समान तीक्ष्ण कटाक्ष निकलते हैं। यहाँ पर उपमेय, नायिका-नेत्रयुगल और कटाक्ष हैं। उपमान, दो नीलकमल और तीक्ष्ण बाण हैं। 'दो नीलकमलोंसे तीखे-तीखे वाण निकलते हैं' ऐसा कहने से उपमेय नेत्रयुगल और कटाक्षकी, उपमान नीलकमलद्वय और तीक्ष्ण वाणके अन्तर्भूत प्रतीति होती है। नीलोत्पलद्वयसे नेत्रद्वय की प्रतीति और तीक्ष्ण बाणोंसे कटाक्षों की प्रतीति होती है। अतः यह रूपकातिशयोक्ति किंवा अतिशयोक्तिका उदाहरण है।

अतिशयोक्तिः—(साहि० १०--४६)

'सिद्धत्वेऽध्यवसायस्यातिशयोक्तिर्निगद्यते ॥'

उपमेयस्य निगरणपुरःसरमुपमानेन सह तस्या भेदज्ञानमध्यवसायः। तथाभूतस्याध्यवसायस्य सिद्धत्वे सति अतिशयोक्तिनामालङ्कारो भवतीत्यर्थः। उत्प्रेक्षायामुपमेयस्यानिश्चितरूपेण निर्देशात्तत्राध्यवसायस्य साध्यत्वं भवति, इह तु तस्य निश्चितरूपेण निर्देशादध्यवसायस्य सिद्धत्वम्।

अतिशयोक्ति (साहि० १०-४६)-उपमेय का निगरण (लोप) करते हुए उपमानके साथ उपमेयका जहाँपर अभेदज्ञान होता है, उसको अध्यवसाय कहते हैं। इस प्रकारका अध्यवसाय जहाँपर सिद्ध हो, वहाँ अतिशयोक्ति नामक अलङ्कार होता है। उत्प्रेक्षालङ्कारमें उपमेयका अनिश्चित रूपसे निर्देश होनेके कारण वहाँ अध्यवसाय साध्य होता है। यहाँ (अतिशयोक्तिमें) उपमेयका उपमानान्तर्गत रूपमें निश्चित रूपसे निर्देश होने के कारण अध्यवसाय सिद्ध होता है।

उदाहरति –

कथमुपरि कलापिनः कलापो विलसति तस्य तलेऽष्टमीन्दुखण्डम्।
कुवलययुगलं ततो विलोलं तिलकुसुमं तदधः प्रवालमस्मात् ॥

अत्र नायिकाकेशकलापभालस्थलनेत्रयुगलनासिकाऽधरोष्ठानामुपमेयानां कलापिकलापादिभिरुपमानैः सहाभेदज्ञानादध्यवसायस्य सिद्धत्वमित्यतिशयोक्तेरुदाहरणमिदम् ।

उदाहरण जैसे-ऊपर तो मयूरके पिच्छभार शोभायमान हैं. उनके तलभाग में अष्टमीका अर्धचन्द्र चमक रहा है, उसके नीचे दो चञ्चल कमल हैं, उसके नीचे तिलपुष्प हैं उसके नीचे प्रवाल (मूंगा) शोभित हो रहा है। इस उदादाहरण ने नायिकाके केशपाश, भालस्थल, नेत्रद्वय, नासिका और अधरोष्ठ-इन उपमेयों का कलापिकलाप, अष्टमीन्दुखण्ड, कुवलययुगल, तिलकुसुम और प्रवाल-इन उपमानों के साथ अभेदज्ञान होनेसे यहाँ अध्यवसाय है और वह सिद्ध भी है। अतः यह अतिशयोक्तिका उदाहरण है।

तुल्ययोगिता—(चन्द्रा० ५-४९, ५०)—

'क्रियादिभिरनेकस्य तुल्यता तुल्ययोगिता ॥
सङ्कुचन्ति सरोजानि स्वैरिणीवदनानि च ।
प्राचीनाचलचूडाग्रचुम्बिबिम्बे सुधाकरे ॥'

यत्रानेकेषां प्रस्तुताप्रस्तुतानामेकगुणक्रियान्वयित्वेन तुल्यता भवेत्तत्र तुल्योगितानामकोऽलङ्कारो भवतीत्यर्थः ।

तुल्योगिता—(चन्द्रा० ५—४६, ५०)—जहाँ पर अनेक प्रस्तुत किंवा अप्रस्तुतोंको एकगुणक्रियान्वयित्वके कारण तुल्यता हो, वहाँ पर तुल्ययोगिता नामक अलङ्कार होता है।

उदाहरति—संकुचन्तीति । सुधाकरे चन्द्रे प्राचीनाचलचूडाग्रचुम्बिबिम्बे उदयाचलशिखराग्रविलसन्मण्डले सति, चन्द्रोदये सञ्जाते इत्यर्थः । सरोजानि कमलानि, स्वैरिणीवदनानि अभिसारिकामुखानि च संकुचन्ति निमीलन्ति । चन्द्रोदये सति कमलानां निमीलनं प्रसिद्धमेव, प्रकाशे परालोकनभिया स्वैरिणीवदनसंकोचोऽप्युचित एवेति भावः । अत्र चन्द्रोदयवर्णनीयत्वेन प्रस्तुतानां सरोजानां स्वैरिणीवदनानां च संकुचनरूपैकक्रियान्वयित्वेन तुल्यत्वात्तुल्ययोगिताऽलंकारोदाहरणमिदम् ।

उदाहरण जैसे—उदयाचलके शिखरपर चन्द्रबिम्ब समुदित होने से कमल

और कुलटा स्त्रियोंके मुख संकुचित होते हैं। चन्द्रोदय होनेसे कमलोंका-संकुचित होना प्रसिद्ध ही है। प्रकाश होने से दूसरे लोग देखेंगे, इस भय से कुलटाओंके मुखोंका म्लान होना भी योग्य ही है। इस उदाहरणमें चन्द्रोदयवर्णनाङ्गरूपेण प्रस्तुत कमल और स्वैरिणीमुखोंका सङ्कोचनरूप एक क्रियामें अन्वय होता है, अतः तुल्यता है और इसी कारणसे यह तुल्योगितालङ्कारका उदाहरण है।

तुल्ययोगिता—(साहि० १०-४)—

'पदार्थानां प्रस्तुतानामन्येषां वा यदा भवेत्।
एकधर्माभिसम्बन्धः स्यात्तदा तुल्ययोगिता ॥'

प्रस्तुतानामप्रस्तुतानां च पदार्थानां यत्र गुणक्रियारूपैकधर्मेण अभिसम्बन्धो भवेत् तत्र तुल्ययोगितानामकोऽलंकारो भवतीत्यर्थः।

तुल्ययोगिता—(साहि० १०-४८)—प्रस्तुत और अप्रस्तुत पदार्थोंका जहाँ पर एकगुणक्रियारूप एक धर्मसे अभिसम्बन्ध हो, वहाँ तुल्ययोगिता नामका अलंकार होता है।

उदाहरणम्—तदङ्गमार्दवं द्रष्टुः कस्य चित्ते न भासते।
मालतीशशभृल्लेखाकदलीनां कठोरता ॥'

अत्र नायिकाङ्गमार्दवे वर्णनीयत्वेन प्रस्तुते अप्रस्तुतानां मालत्यादीनां कठोरतारूपैकगुणात्मकधर्माभिसम्बन्धात् तुल्ययोगिताऽलंकारोदाहरणमिदम्।

उदाहरण जैसे—उस सुन्दरीके शरीर की सुकुमारता देखकर मालती, चन्द्र-कला और कदली किस रसिक पुरुषको कठोर मालूम नहीं पड़ती। यहाँपर नायिकाङ्गमार्दव वर्णनीयत्वेन प्रस्तुत है, मालत्यादि पदार्थ अप्रस्तुत हैं, उनका कठोरतारूप एकगुणात्मक धर्मसे सम्बन्ध होनेसे तुल्ययोगितालंकारका यह उदाहरण है।

दृष्टान्तः—(चन्द्रा० ५-५४, ५५)—

'चेद् बिम्बप्रतिबिम्बत्वं दृष्टान्तस्तदलङ्कृतिः।
स्यान्मल्लप्रतिमल्लत्वे संग्रामोद्दामहुङ्कृतिः ॥
दृष्टान्तश्चेद्भवन्मूर्तिस्तन्मृष्टा दैवदुर्लिपिः।
जाता चेत्प्राक् प्रभा भानोस्तर्हि याता विभावरी ॥'

यत्र वाक्यार्थयोर्मिथो विम्बप्रतिविम्बभावः, तत्र दृष्टान्ताख्योऽलङ्कार इत्यर्थः । विम्बप्रतिविम्बभावो नाम यथा विम्बप्रतिविम्बयोरेका छाया तथा मिथो भिन्नयोरप्युपमानोपमेययोः पृथगुपात्तसाधारणधर्मयोः सर्वाङ्गीणसाम्यमूलकोऽभेदावभासः ।

दृष्टान्त (चन्द्रा० ५–५४, ५५)--जहाँपर दो वाक्यार्थोंका परस्पर विम्बप्रतिविम्बभाव होता है, वहाँपर दृष्टान्त नामका अलङ्कार होता है । विम्बप्रतिबिंबभावका तात्पर्य इस प्रकार है —जैसे विम्ब और प्रतिबिम्ब की एकही छाया होती है उसी तरह सर्वथा भिन्न उपमानोपमेय वाक्यार्थोंका (जिसका साधारणधर्म पृथक् कहा गया हो) सादृश्यमूलक अभेदावभास होने से उपमानोपमेयवाक्यार्थों की एक ही छाया जहाँ हो जाती है, वहाँ विम्बप्रतिबिम्बभाव होता है।

लक्षणश्लोक एवोदाहरणमपि । तथाहि विम्बप्रतिविम्बभावश्चेद्वाक्यार्थयोस्तदा तयोर्दृष्टान्तोऽलङ्कृतिः स्यादिति पूर्वार्द्धार्थः । मल्लप्रतिमल्लत्वे सति = मल्लप्रतिमल्लगतबाहुयुद्धकरणरूपधर्मे सति, बाहुयुद्धं कुर्वतोर्मल्लप्रतिमल्लयोः सोतरित्यर्थः । संग्रामे बाहुयुद्धे उद्दामा प्रचण्डा उत्कृष्टा वा हुंकृतिर्हुंकारः स्यादित्युत्तरार्द्धार्थः । मल्लप्रतिमल्लत्वे यथा संग्रामोद्दामहुंकृतिः स्यात्तथा यदि विम्बप्रतिविम्बत्वे तदा दृष्टान्तः स्यादित्यन्वयात्पूर्वोत्तरवाक्यार्थयोर्बिम्बप्रतिबिम्बभावो भवतीति दृष्टान्तोदाहरणमिदम् । अत्र दृष्टान्तसहितस्य विम्बप्रतिबिम्बत्वस्य हुङ्कृतिसहितस्य मल्लप्रतिमल्लत्वस्य च मिथो विम्बप्रतिबिम्बभावोऽस्ति ।

लक्षणश्लोकमें ही उदाहरण भी सन्निविष्ट है। जैसे वाक्यार्थोंका जहाँ विम्ब प्रतिविम्बभाव हों, वहाँ दृष्टान्तालङ्कार होता है, यह पूर्वार्द्धका अर्थ है। मल्लप्रतिमल्लत्वके होनेसे अर्थात् दो परस्पर प्रतिद्वन्द्वी मल्लोंका बाहुयुद्ध होनेसे बाहुयुद्ध संग्राम में प्रचण्ड हुंकार होता है---यह उत्तरार्द्ध का अर्थ है। 'मल्लप्रतिमल्लत्वमें जैसे प्रचण्ड हुंकार है, वैसे विम्बप्रतिविम्बत्व होनेसे दृष्टान्तालङ्कार होता है, ऐसा अन्वय करने से पूर्वोत्तरवाक्यार्थों का विम्बप्रतिविम्बभाव होता है, अतः दृष्टान्तालंकार का उदाहरण भी यही है। इस उदाहरण में दृष्टान्तसहित विम्बप्रतिबिंबत्वका और हुंकृतिसहित मल्लप्रतिमल्लत्वका परस्परविम्बप्रतिविम्बभाव है।

दृष्टान्तहुङ्कृत्योर्लिङ्गभेदेन विम्बप्रतिबिम्बभावस्य स्पष्टमनवभा-

सादुदाहरणान्तरमाह-दृष्टेति। भगवन्तं प्रति भक्तस्योक्तिः—हे भगवन्! भवन्मूर्तिः। गुरुपदिष्टध्यानानुसारिभवद्रूपमन्तः हृदये चेत् यदि दृष्टा अन्तर्मुखनयनगोचरीकृता तत् तदा दैवदुर्लिपिः दुर्भाग्यलेखः मृष्टा प्रोञ्छिता नष्टेत्यर्थः। मनसि भगवन्मूर्तिं ध्यायतां दुर्भाग्यं दूरीभवतीति भावः। प्राक् प्राच्यां। चेत् यदि भानोः सूर्यस्य प्रभा आतपः जाता गोचरीकृता तर्हि तदा विभावरी रात्रिः याता गता। प्राचीमुखे समुज्ज्वले सति रात्रिरपसरत्येवेति भावः। तत्र पूर्वोत्तरवाक्यार्थयोर्बिम्बप्रतिबिम्बभावः स्पष्ट इति स्पष्टमिदं दृष्टान्तोदाहरणम्।

दृष्टान्त और हुंकृति शब्दों में लिङ्गभेद होने के कारण यहाँपर बिम्बप्रतिबिम्बभाव स्पष्ट प्रतीत नहीं होता है। इसलिए दूसरा स्पष्ट उदाहरण देते हैं भगवान् के प्रति भक्तकी उक्ति है कि 'हे भगवन्! आपकी मूर्ति यदि हृदयमें देखी, अर्थात् हृदय में यदि आपका ध्यान किया तो दुर्भाग्य की लिपि पोंछी गई अर्थात् दुर्भाग्य दूर हुआ। पूर्व दिशा में यदि सूर्य की प्रभा दीख पड़ी तो, रात्रि दूर हो गई। यहाँ पर पूर्वोत्तरवाक्यार्थोंका बिम्बप्रतिबिम्बभाव स्पष्ट है, अतः यह दृष्टान्त का स्पष्ट उदाहरण है।

दृष्टान्तः—(साहि० १०-५०)—

'दृष्टान्तस्तु सधर्मस्य वस्तुनः प्रतिबिम्बनम्।'

सधर्मस्य सदृशस्य वस्तुनः उपमेयवाक्यार्थस्य तथाविधपृथगुपात्तसामान्यधर्मेण सदृशेनोपमानवाक्यार्थेन बिम्बप्रतिबिम्बभावश्चेत् तदा दृष्टान्तो नामालङ्कारो भवतीत्यर्थः।

दृष्टान्त (साहि० १०-५०)--साधारण धर्म सहित उपमेयवाक्यार्थका साधारणधर्मसहित पृथक् उपात्त उपमानवाक्यार्थ के साथ यदि बिम्बप्रतिबिम्बभाव हो तो दृष्टान्त नामक अलंकार होता है।

उदाहरणं यथा—

अविदितगुणाऽपि सत्कविभणितिः कर्णेषु वमति मधुधाराम्।
अनधिगतपरिमलाऽपि हि हरति दृशं मालतीमाला॥

अत्र पूर्वार्द्धार्थस्योपमेयवाक्यार्थस्य उत्तरार्द्धार्थेनोपमानवाक्यार्थेन सह बिम्बप्रतिबिम्बभाव इति दृष्टान्तोदाहरणमिदम्। अविदितगु-

णाया अपि सत्कविभणितेः कर्णेषु मधुधारावमनकरणम्, अनधिगतपरिमलाया अपि मालतीमालाया नयनलोभनीयत्वमिवेति साम्ये पर्यवसानम्।
उदाहरणान्तरं यथा शाकुन्तले—

'तपति तनुगात्रि ! मदनस्त्वामनिशं मां पुनर्दहत्येव।
ग्लपयति यथा शशाङ्कं न तथा हि कुमुद्वतीं दिवसः ॥'

अत्राऽपि पूर्वोत्तरार्द्धवाक्यार्थयोर्विम्बप्रतिविम्बभावात् दृष्टान्तः। हे तनुगात्रि ! मदनः त्वां तपति, मां तु दहत्येव। दिवसः कुमुद्वतीं तथा न ग्लपयति, यथा शशांकं ग्लपयति। अत्र पूर्वार्द्धवाक्यार्थः उपमेयम्, उत्तरार्द्धवाक्यार्थस्तूपमानमिति साम्ये पर्यवसानं ज्ञेयम्।

उदाहरण जैसे--जिसके अर्थसौष्ठवादि गुण विदित नहीं हुए हैं, ऐसी भी सत्कवियोंकी उक्ति कर्णमें मधुधाराकी वृष्टि करती है (दूर होने के कारण) जिसके सुगन्धका ज्ञान नहीं हुआ है, ऐसी भी मालतीपुष्पोंकी माला दृष्टि हरण करती है। इस उदाहरणमें पूर्वार्द्ध वाक्यार्थ रूप उपमेयवाक्यर्थका उत्तरार्द्ध वाक्यार्थरूप उपमान वाक्यार्थके साथ विम्बप्रतिविम्बभाव है, अतः यह दृष्टान्तालंकारका उदाहरण है। अविदितगुणा ऐसी भी सत्कविभणितिका कर्णो में मधुधारावमन करना, अनधिगतपरिमला ऐसी भी मालतीमालाके नयनलोभनीयत्व के समान है, अतः पर्यवसान साम्य में होता है।

दूसरा उदाहरण जैसे शाकुन्तलनाटकमें--'हे कृशाङ्गि ! कामदेव तुमको केवल ताप ही देता है, मुझको तो दिनरात जलाया करता है। दिवस कुमुदिनीको केवल म्लान करता है, चन्द्रको तो लुप्तही कर देता है।' यहाँपर भी पूर्वोत्तरार्द्ध वाक्यार्थों का परस्पर विम्बप्रतिबिम्बभाव होनेसे दृष्टान्तालंकार होता है। पूर्वार्द्ध वाक्यार्थ उपमेय है, उत्तरार्द्ध वाक्यार्थ उपमान है। पर्यवसान में साम्यकी प्रतीति होता है।

व्यतिरेकः— (साहि० ५–५७)—

'व्यतिरेको विशेषश्चेदुपमानोपमेययोः।
शैला इवोन्नताः सन्तः किन्तु प्रकृतिकोमलाः ॥'

उपमानापेक्षया उपमेये विशेषश्चेद् व्यतिरेकनामालङ्कारो भवतीत्यर्थः। विशेषश्च न्यूनत्वाधिकस्वरूपः। तथा च उपमानापेक्षया उपमेये न्यूनत्वेऽधिकत्वे वा सति व्यतिरेको भवतीति फलितम्।

व्यतिरेक (चन्द्रा० ५-५)-उपमान की अपेक्षा उपमेयमें कुछ विशेष हो तो वहाँ व्यतिरेक नामक अलंकार होता है। यहाँपर विशेषसे न्यूनत्व किंवा अधिकत्व विवक्षित है। अर्थात् जहाँपर उपमान की अपेक्षा उपमेय में न्यूनत्व किंवा अधिकत्व हो, वहाँ व्यतिरेक अलंकार होता है।

उदाहरति शैला इवेति। सन्तः सज्जनाः शैला इव पर्वता इव उन्नताः उच्चैः शिरसः सज्जनशैलयोः साम्यं दर्शितम्। 'किन्तु प्रकृतिकोमलाः' इति कथनेन उपमेयेषु सत्सु प्रकृतिकठिनोपमानभूतपर्वतापेक्षया प्रकृतिकोमलत्वरूपाधिक्यात्मको विशेषो दर्शित इति व्यतिरेकोदाहरणमिदम्।

उदाहरण जैसे—सज्जन पर्वतोंके समान उन्नत हैं, किन्तु स्वभावतः कोमल हैं। यहाँपर 'सज्जन पर्वतोंके समान उन्नत हैं, ऐसा कहने से सज्जन और पर्वतोंका साम्य दिखाया है। 'किन्तु स्वभावतः कोमल हैं, ऐसा कहने से उपमेयभूत सज्जनोंमें स्वभावतः कठिन उपमानभूत पर्वतों की अपेक्षा प्रकृतिकोमलस्वरूप आधिक्यात्मक विशेष दिखाया है। अतः यह व्यतिरेक अलंकार का उदाहरण है।

व्यतिरेकः— (साहि० १०-५२)—

'आधिक्यमुपमेयस्योपमानान्न्यूनताऽथवा।
व्यतिरेकः ········ ॥'

उपमेयस्य उपमानाधिक्ये न्यूनत्वे वा व्यतिरेको नामालङ्कारो भवतीत्यर्थः।

व्यतिरेक (सा० १०-५२)—उपमान की अपेक्षा उपमेयमें कुछ आधिक्य अथवा न्यूनत्व हो तो व्यतिरेक नामक अलंकार होता है।

उदाहरणं यथा शिशुपालवधे १ सर्गे नारदागमनवर्णने (श्लो० २)—

गतं तिरश्चीनमनूरुसारथेः प्रसिद्धमूर्ध्वज्वलनं हविर्भुजः।
पतत्यधो धाम विसारि सर्वतः किमेतदित्याकुलमीक्षितं जनैः॥

अत्रोपमेयस्य मुनिधाम्नः सूर्याग्निभ्यामुपमानाभ्यामधः प्रसरणधर्मेणाधिक्यवर्णनाद्व्यतिरेकः।

उदाहरण जैसे-शिशुपालवध महाकाव्यके प्रथम सर्गमेंनारदागमनर्णनप्रसङ्गमें

(श्लो० २)—सूर्य की तिरछी (पूर्वसे पश्चिममें) गति प्रसिद्ध है, अग्निकी ज्वाला ऊर्ध्व भागमें होती है, यह भी प्रसिद्ध है। किन्तु चारों तरफ फैलनेवाला यह तेज नीचे की तरफ आ रहा है, यह क्या है ? इस बातको व्याकुल चित्त होकर लोग देखने लगे। यहाँपर मुनितेज उपमेय है, सूर्याग्नितेज उपमान है, उपमेय मुनितेज में उपमान सूर्याग्नितेजकी अपेक्षा अधः प्रसरणरूप धर्मका आधिक्य होने से यह व्यतिरेकालङ्कारका उदाहरण है।

श्लेषः—(चन्द्रा० ५-६३, ६४, ६५)—

'खण्डश्लेषः पदानां चेदेकैकं पृथगर्थता।
उच्छलद्भूरिकीलालः शुशुभे वाहिनीपतिः॥
भङ्गश्लेषः पदस्तोमस्यैव चेत् पृथगर्थता।
अजरामरता कस्य नायोध्येव पुरी प्रिया॥
अर्थश्लेषोऽर्थसार्थस्य यद्यनेकार्थसंश्रय।
कुटिलाः श्यामला दीर्घाः कटाक्षाः कुन्तलाश्च ते॥'

खण्डश्लेषं लक्षयति—खण्डश्लेष इति। वाक्यघटकपदानां मध्ये एकैकस्य पदस्य पृथक्-पृथक् अर्थद्वयबोधकत्वं चेत्तदा स खण्डश्लेष इत्युच्यते। तत्र प्रत्येकं पदं भिन्नार्थं स खण्डश्लेप इत्यर्थः।

श्लेष (चन्द्रा० ५-६३, ६४, ६५) खण्डश्लेष—जहाँपर किसी वाक्य के अन्तर्गत प्रत्येक पद दो-दो अर्थ बोधन कराते हों, वहाँ पर खण्डश्लेप नामका अलङ्कार होता है।

उदाहरणम्-उच्छलदिति। अत्र कीलालपदस्य रुधिरं जलं चार्थः। वाहिनीपतिपदस्य सेनापतिः सरित्पतिश्चार्थः। तथा च प्रकृतोदाहरणे मुख्यतः श्लेषसाधकयोः कीलालवाहिनीपतिशब्दयोः पृथक्-पृथक् रुधिरजलसेनापतिसरित्पतिरूपार्थबोधकत्वेन लक्षणसमन्वयात् खण्डश्लेषोऽयम्। पर्यवसाने सेनापतिः सरित्पतिरिवेत्यौपम्यं प्रतीयते।

उदाहरण जैसे—'जिसमें कीलाल बहुत उछल रहा है, ऐसा वाहिनीपति शोभायमान था' यहाँ पर 'कीलाल' पद का अर्थ रुधिर और जल है, 'वाहिनी-

पति' पद का भी अर्थ सेनापति और समुद्र है। इस उदाहरणमें मुख्यतः श्लेष-साधक कीलाल और वाहिनीपति शब्दों का पृथक्-पृथक् रुधिर, जल और सेनापति सरित्पति रूप अर्थबोधकत्व होने से लक्षणसमन्वय होता है, अतः यह खण्ड-श्लेष का उदाहरण है। पर्यवसान में सेनापति सरित्पति के समान है' इस प्रकार औपम्य की प्रतीति होती है।

भङ्गश्लेपं लक्षयति - भङ्गश्लेष इति। यत्र पदसमुदायस्यैव न तु खण्डश्लेपवत् प्रत्येकं पदस्य, पृथगर्थबोधकत्वं तत्र भङ्गश्लेष इत्यर्थः। अर्थद्वयप्रतिपादकपदद्वयस्य मिलनादैकार्थ्यप्रतिपादकत्वे स भङ्गश्लेष इति भावः।

भङ्गश्लेष—जहांपर पदसमुदायकी, न कि खण्डश्लेषवत् प्रत्येक पदकी पृथगर्थबोधकत्व होता है, वहांपर भङ्गश्लेष होता है। अर्थद्वय का प्रतिपादन करनेवाले दो पदोंके मेलसे जहांपर एकार्थ को प्रतीव होती है, वहाँ भङ्गश्लेष होता है, यह फलितार्थ है।

उदाहरति—अजरेति। अत्र अजरामरतेति द्वन्द्वोत्तरभावप्रत्यय-स्योभयत्र सम्बन्धात् अजरता-अमरता-इत्यर्थस्य, अजश्च रामश्चेति द्वन्द्वगर्भषष्ठीतत्पुरुषेण अजरामविषयकप्रीतिमती-इत्यर्थस्य च प्रतिपादनात् पृथगर्थत्वम्, तच्च न प्रत्येकं पदस्य, किन्तु अजरामरता इति पदस्तोमस्येति भङ्गश्लेषोदाहरणमिदम्। यथा अयोध्यापुरी अजरामयोः रता प्रिया, तथा अजरामरभावः कस्य न प्रिय इति भावः।

उदाहरण जैसे–अयोध्या पुरीकें समान अजरामरता किसको प्रिय नहीं है। 'अजरामरता' पदमें द्वन्द्वसमासोत्तर भावप्रत्ययका दोनों के साथ सम्बन्ध होनेसे 'अजरता और अमरता' इस अर्थका, तथा 'अज और राम' द्वन्द्वगर्भ षष्ठी-तत्पुरुषसे 'अज और रामके विषयमें प्रीतिरखनेवाली' इस अर्थका भी प्रतिपादन होने से पृथगर्थत्व है, किन्तु वह प्रत्येक पदको नहीं, पदसमुदायको है। अतः यह भङ्गश्लेष का उदाहरण है। जिस प्रकार अयोध्यापुरी अज और राम को प्रिय है वैसे ही अजरता और अमरता किसको प्रिय नहीं है, यह भावार्थ है।

अर्थश्लेपं लक्षयति-अर्थश्लेष इति अर्थसार्थस्य अर्थमात्रसमुदायस्य न तु शब्दविशिष्टस्य, तेन पर्यायशब्दोपस्थाप्यत्वमुक्तम्। अनेकार्थसंश्रय इति। उपमानोपमेयरूपः अनेकाऽर्थः यदि आश्रयत्वेन कथ्यते तत्र-

त्यर्थः । तथा च पर्यायशब्दोपस्थाप्यार्थद्वयोपस्थापकपदत्वमर्थश्लेषत्वमिति फलितम् ।

अर्थश्लेष—जहाँपर अर्थसमुदायमात्रको अनेकार्थबोधकत्व होता है, वहाँ अर्थश्लेष होता है । इससे शब्दविशेष में अभिनिवेश न रखते हुए केवल अर्थमात्रकी ही अपेक्षा होती है । अतः एक शब्दको बदलकर उसके स्थानों में पर्याय शब्द रखने में भी काम चल सकता है । एतावता पर्याय शब्दसे प्रतीत होनेवाले दो अर्थों के बोधक पद जहाँ हों, वहाँ अर्थश्लेष होता है, यह फलितार्थ हुआ ।

उदाहरति—कुटिला इति । यत्र कटाक्षकुन्तलयोरुभयोरपि वर्णनीयत्वात् प्रस्तुतत्वम्, पर्यायेण च तयोरुपमानोपमेयत्वम्, कुटिलादीनि विशेषणानि उभयोः समानि । 'तत्र कुटिलाः श्यामलाः दीर्घाः' इत्यनुक्त्वा वक्रा नीला आयताश्च' इत्युक्तावपि नार्थश्लेषहानिः पदपरिवर्तनेऽपि अर्थस्य तुल्यत्वात् ।

उदाहरण जैसे—इस नायिका के कटाक्ष और केश कुटिल, श्यामल और दीर्घ हैं । यहाँपर नायिकाके वर्णन के अङ्गभूत होनेसे कटाक्ष और केश दोनों वर्णनीयत्वेन प्रस्तुत हैं । पर्यायेण दोनों को उपमानोपमेयत्व है । कुटिल आदि विशेषण दोनों में समान हैं । 'कुटील श्यामल-दीर्घ' ऐसा न कहकर 'वक्र-नील-आयत' ऐसा कहने पर भी अर्थश्लेष नहीं बिगड़ता, क्योंकि पद बदलने पर भी अर्थ वही है ।

श्लेषः—(साहि० १०-११)—

'श्लिष्टैः पदैरनेकार्थाभिधाने श्लेष इष्यते ।'

समानानुपूर्वीकत्वेनैकप्रयत्नोच्चार्यतयाऽप्रतीतभेदैरत एवं जतुकाष्ठन्यायेन श्लिष्टैः पदैः अनेकार्थानामभिधाने शक्त्या बोधने श्लेषनामा अलङ्कारो भवतीत्यर्थः । अत्रेदं बोध्यम्—सकृदुच्चरितः शब्दः सकृदर्थं गमयतीति पूर्वेषां सिद्धान्तः, अर्थभेदेन शब्दभेद इति च । तथा च भिन्नार्थानां सरूपाणां शब्दानामर्थभेदेन वस्तुतो भिन्नानामपि युगपदेकप्रयत्नेनोच्चारणं कर्तुं शक्यते । यत्र समानानुपूर्वीका अपि नानार्था अत एव भिन्नाः शब्दा जतुकाष्ठन्यायेन श्लिष्टाः सन्तो युगपदनेकार्थप्रतीतिःशक्त्यैव कुर्वन्ति चेत्तत्र शब्दश्लेषो भवति ।

श्लेष (साहि० १०-११) आनुपूर्वी समान होनेसे एक प्रयत्नसे उच्चा-

रणयोग्य अतएव जिनमें भेदप्रतीति नहीं होती और जतु-काष्ठन्याय (चपड़ासे जुटी हुई लकड़ी) से श्लिष्ट (जुटे हुए) पदों द्वारा जहाँपर अनेक अर्थोंका शक्तिवृत्तिसे बोध होता है, वहाँपर श्लेष नामका अलकार होता है। यहाँपर यह बात ध्यानमें रखनी चाहिए कि—'एक वार उच्चारण किया हुआ शब्द एक ही अर्थका बोधन कराता है, यह प्राचीनोंका सिद्धान्त है और 'अर्थभेद से शब्दभेद होता है' यह भी। भिन्न अर्थवाले, समानाकारक और अर्थभेद होनेसे वस्तुतः भिन्न शब्दों का युगपत् एक प्रयत्न में उच्चारण किया जा सकता है। समानाकारक, नानार्थ, अतएव भिन्न शब्द जतुकाष्ठन्याय (चपड़ासे जुड़ी हुई लकड़ी) से श्लिष्ट (जुटे) होते हुए जहाँपर एकही समयमें अनेक अर्थोंको शक्तिवृत्ति द्वारा बोधित कराये वहां शब्दश्लेप होता है।

यथा 'विधौ' इत्यत्र विधिविधुशब्दयोर्भिन्नाकारयोरपि 'विधौ' इति सप्तम्येकवचने समानाकारत्वम्। वस्तुतोऽर्थभेदेन भिन्नयोरपि जतुकाष्ठन्यायेन श्लेष इति शब्दश्लेषोदाहरणमिदम्। शब्दश्लेषोदाहरणान्तरं यथा शिशुपालवधे (२-११२)—

'शब्दविद्येव नो भाति राजनीतिरपस्पशा ॥'

अत्र 'अपस्पशा' इत्यंशे 'अ-पस्पशा' 'अप = स्पशा' पस्पशाह्निकरहिता—चररहिता-इत्यर्थद्वयेन शब्दभेदेऽपि जतुकाष्ठन्यायेन श्लेषात् शब्दश्लेषः। शब्दश्लेषे शब्दस्यैव मुख्यतया तदन्वयव्यतिरेकानुविधायित्वेन शब्दालङ्कारः।

जैसे—'विधौ' इस उदाहरण में विधि और विधु शब्द भिन्नाकार होनेपर 'विधौ' इस सप्तम्येकवचनमें समानाकार ही रहते हैं। वास्तव में यहाँपर अर्थभेदके कारण दोनों शब्द भिन्न हैं तो भी उनका जतुकाष्ठन्यायसे श्लेष है। अतः यह शब्दश्लेपका उदाहरण है। शब्दश्लेष का दूसरा उदाहरण जैसे शिशुपाल-वधके द्वितीय सर्ग में (श्लो० ११२) —'शब्दविद्या के समान राजनीति भी 'अपस्पशा' होने से नहीं शोभती।' यहां पर 'अपस्पशा' इस अंश में 'अपस्पशा' 'अप-स्पशा' = पस्पशा नामक आह्निक से रहित (महाभाष्य के पस्पशाह्निकमें व्याकरणाध्ययनकी आवश्यकता वर्णित है) स्पश = चरसे रहित, इस प्रकार दो अर्थ होनेसे शब्दभेद स्पष्ट ही है, उन शब्दोंका जतुकाष्ठन्याय से यहां पर श्लेष है, अतः यह शब्दश्लेप का उदाहरण है। शब्दश्लेप में शब्द

ही मुख्य है। उसीके साथ अन्वय व्यतिरेक होनेसे यह शब्दालंकार कहा जाता है।

यत्रैक एव शब्दः एकवृन्तावलम्बिफलद्वयन्यायेनार्थद्वयं बोधयति तत्रार्थश्लेषो भवति। शब्दश्लेषे शब्दयोर्जतुकाष्ठन्यायेन श्लेषो भवति। अर्थश्लेषे तु अर्थयोरेकवृन्तावलम्बिफलद्वयन्यायेन श्लेषो भवति इति भेदः।

जहाँपर एक ही शब्द एकही डालमें लटकनेवाले दो फलों के समान दो अर्थोंका बोध कराता है, वहाँ अर्थश्लेष कहा जाता है। शब्दश्लेषमें शब्दोंका जतुकाष्ठन्याय से श्लेष होता है। अर्थश्लेषमें अर्थोंका एक ही डालमें लटकने वाले दो फलोंके न्यायसे श्लेष होता है, यही दोनों में भेद है।

अर्थश्लेषोदाहरणं यथा—

'स्तोकेनोन्नतिमायाति स्तोकेनायात्यधोगतिम्।
अहो सुसदृशी वृत्तिस्तुलाकोटेः खलस्य च॥'

अत्र उन्नतिशब्दस्य उपर्युत्थानमभ्युदयश्चार्थौ, अधोगतिशब्दस्य च नीचैर्गमनमपकर्षश्चार्थाविति तयोः श्लेषः

अर्थश्लेष का उदाहरण जैसे—'थोड़े ही में उन्नति को प्राप्त होता है और थोड़े ही में अधोगतिको प्राप्त होता है, आश्चर्य है, 'तराजूका पलड़ा और खल' इन दोनोंकी वृत्ति समान है। यहाँ पर उन्नति शब्दका अर्थ ऊपर उठना और अभ्युदय है, अधोगति शब्दका अर्थ नीचे और अपकर्ष है, इन दो अर्थोंका यहाँपर श्लेष है।

अस्यान्ये प्रभेदा आकरेभ्योऽवसेयाः, अत्र दिङ्मात्रं प्रदर्शितम्।

इस श्लेषालङ्कार के इतर अनेक भेद-प्रभेद आकर-ग्रन्थों से ज्ञात हो सकते हैं। यहाँ पर केवल दिग्दर्शनमात्र किया है।

अर्थान्तरन्यासः—(चन्द्रा० ५–६६)—

'भवेदर्थान्तरन्यासोऽनुषक्तार्थान्तराभिधा।
हनूमानब्धिमतरत् दुष्करं किं महात्मनाम्॥'

यत्र अनुषक्तार्थान्तराभिधा तत्र अर्थान्तरन्यासो भवेदित्यन्वयः। यत्र मुख्येनार्थेन अनुषक्तं सहितमर्थान्तरमभिधीयते तत्रार्थान्तरन्यासो भवेदित्यर्थः। यद्वा अनुषक्तं मुख्यार्थस्य साधकमर्थान्तरं यत्र तत्रार्थान्तरन्यास इति वा।

अर्थान्तरन्यास (चन्द्रा० ५–६६)—जहाँपर मुख्य अर्थके साथ सम्बद्ध अर्थान्तरका अभिधान किया जाय, वहाँ अर्थान्तरन्यास नामका अलङ्कार होता है। किंवा जहाँपर मुख्य अर्थका साधक अर्थात् समर्थन करनेवाला अर्थान्तर हो, वहाँ अर्थान्तरन्यास नामक अलंकार होता है।

उदाहरति—हनूमानिति। अत्र 'हनूमान् अब्धिमतरद्' इति मुख्यं वाक्यम् तदर्थेऽनुपक्तमर्थान्तरं 'दुष्करं किं महात्मनाम्' इति। किं वा 'हनूमानब्धिमतरत्' इति पूर्ववाक्यार्थस्य साधकमर्थान्तरं 'दुष्करं किं महात्मनाम्' इति वर्तते इत्यर्थान्तरन्यासोदाहरणमिदम्। अर्थान्तरस्य न्यासो यत्रेत्यन्वर्थमलंकारनाम।

उदाहरण जैसे—हनुमानजीने समुद्रको पार किया, क्योंकि महात्माओं के लिए कोई भी कार्य दुष्कर नहीं है। यहाँपर 'हनुमानजीने समुद्र को पार किया' यह मुख्य वाक्य है, उससे सम्बद्ध किंवा उसका समर्थक अर्थान्तर 'महात्माओंके लिए कोई भी कार्य दुष्कर नहीं है' यह उपात्त है, अतः यह अर्थान्तरन्यासका उदाहरण है।

अर्थान्तरन्यासः—(साहि० १०–६१, ६२)—

'सामान्यं वा विशेषेण विशेषस्तेन वा यदि।
कार्यं च कारणेनेदं कार्येण च समर्थ्यते॥
साधर्म्येणेतरेणार्थान्तरन्यासोऽष्टधा ततः।'

यत्र सामान्येन विशेषः, विशेषेण सामान्यम्, कारणेन कार्यम्, कार्येण कारणं वा, साधर्म्येण वैधर्म्येण वा समर्थ्यते तत्रार्थान्तरन्यासो नामालङ्कारो भवति। अयमुक्तरीत्या चतस्रो विधाः साधर्म्यस्य चतस्रो वैधर्म्यस्येति मिलित्वाऽष्टप्रकारको भवति।

अर्थान्तरन्यासः (साहि० १०–६१, ६२) जहाँपर सामान्यसे विशेषका, विशेषसे सामान्यका, कारणसे कार्यका और कार्यसे, कारणका, साधर्म्यसे किंवा वैधर्म्यसे समर्थन किया जाता हो वहाँपर अर्थान्तरन्यास नामका अलंकार होता है। उक्त रीति से चार प्रकार साधर्म्यमूलक और चार वैधर्म्यमूलक होने से यह अलंकार आठ प्रकार का होता है।

विशेषेण सामान्यसमर्थनोदाहरणं यथा शिशुपालवधे (२-१००)—

'बृहत्सहायः कार्यान्तं क्षोदीयानपि गच्छति ।
सम्भूयाम्भोधिमभ्येति महानद्या नगापगा ॥'

अत्र द्वितीयार्द्धगतेन विशेषरूपेणार्थेन प्रथमार्द्धगतः सामान्यरूपोऽर्थः समर्थितो भवतीति विशेषेण सामान्यसमर्थनरूपार्थान्तरन्यासोदाहरणमिदम् ।

विशेष से सामान्य के समर्थनरूप अर्थान्तरन्यास का उदाहरण जैसे शिशुपालवध के द्वितीय सर्ग में (श्लो० १००) –'क्षुद्र मनुष्य भी बड़ों की सहायता से किसी विशिष्ट कार्य को कर सकता है। क्षुद्र पहाड़ी नदी भी किसी महानदी के साथ मिलकर समुद्र तक पहुंच सकती है।' यहाँपर विशेषरूप द्वितीयार्द्धार्थ से सामान्यरूप प्रथमार्द्धार्थ समर्थित होता है। अतः विशेष से सामान्यसमर्थनरूप अर्थान्तरन्यास का यह उदाहण है।

सामान्येन विशेषसमर्थनरूपार्थान्तरन्यासोदाहरणं यथा शिशुपालवधे (२-१३) –

'यावदर्थपदां वाचमेवमादाय माधवः ।
विरराम महीयांसः प्रकृत्या मितभाषिणः ॥'

अत्र 'यावदर्थपदां वाचमेवमादाय माधवः विरराम' इति विशेषात्मनो वाक्यार्थस्य 'महीयांसः प्रकृत्याः मितभाषिणः' इति सामान्यात्मना वाक्यार्थेन समर्थनात् सामान्येन विशेषसमर्थनरूपार्थान्तरन्यासोदाहरणमिदम् ।

सामान्य से विशेषसमर्थनरूप अर्थान्तरन्यास का उदाहरण जैसे शिशुपालवध के द्वितीय सर्ग में (श्लो० २–१३)–'सर्वथा सार्थक पदोंसे युक्त वाणी बोलकर माधव चुप हो गये। क्योंकि बड़े लोग स्वभावतः ही मितभाषी होते हैं।' यहाँपर 'सर्वथा सार्थक पदोंसे युक्त वाणी बोलकर माधव चुप हो गये' इस विशेषात्मक वाक्यार्थ का 'बड़े लोग स्वभावतः मितभाषी होते हैं' इस सामान्यात्मक वाक्यार्थ के द्वारा समर्थन होने से सामान्य से विशेषसमर्थनरूप अर्थान्तरन्यास का यह उदाहरण है।

कारणेन कार्यसमर्थनरूपार्थान्तरन्यासोदाहरणं यथा—

पृथ्वि ! स्थिरा भव भुजंगम ! धारयैनां
त्वं कूर्मराज ! तदिदं द्वितयं दधीथाः ।

दिक्कुञ्जराः ! कुरुत तत्त्रितये दिधीर्षां
देवः करोति हरकार्मुकमाततज्यम् ॥

इयं लक्ष्मणोक्तिः । अत्र कारणभूतेन रामकर्तृकहरकार्मुकाततज्याकरणेन पृथ्वीस्थैर्यादि कार्यं समर्थ्यते इति कारणेन कार्यसमर्थनरूपार्थान्तरन्यासोदाहरणमिदम् ।

कारण से कार्यसमर्थनरूप अर्थान्तरन्यास का उदाहरण जैसे हे पृथ्वी ! तुम स्थिर रहना, हे नगराज ! तुम पृथ्वी को धारण करते रहना, हे कूर्मराज ! तुम इन दोनों को धारण करते रहो, हे दिग्गज ! आप इन तीनोंके धारण की इच्छा करते रहें, क्योंकि आर्य (श्रीरामजी) महादेवजीके धनुष को सज्ज कर रहे हैं ।' यह लक्ष्मण की उक्ति है । यहाँपर रामका महादेवजीके धनुष को सज्ज करना कारणरूप, उससे पृथ्वीस्थैर्यादि कार्यों का समर्थन किया जाता है, अतः कारण से कार्यसमर्थनरूप अर्थान्तरन्यास का यह उदाहरण है ।

कार्येण कारणसमर्थनरूपार्थान्तरन्यासोदाहरणे यथा किरातार्जुनीये (२-३०)

'सहसा विदधीत न क्रियामविवेकः परमापदां पदम् ।
वृणते हि विमृश्यकारिणं गुणलुब्धाः स्वयमेव संपदः ॥'

अत्र सम्पत्करणरूपेण कार्येण सहसा विधानाभावस्य विमृश्यकारित्वस्य च कारणस्य समर्थनं भवतीति कार्येण कारणसर्थनरूपार्थान्तरन्यासोदाहरणमिदम् ।

कार्य से कारणसमर्थनरूप अर्थान्तरन्यास का उदाहरण जैसे किरातार्जुनीयके द्वितीय सर्ग में (श्लो० २-३०)-'बिना विचारे अकस्मात् कोई कार्य नहीं करना, अविचार से आपत्तियाँ आती हैं । क्योंकि विचारी पुरुष को उसके गुणों से लुब्ध होकर संपत्तियाँ स्वयमेव वरण करती हैं ।' यहाँपर सम्पत्करणरूप कार्य से सहसा विधानाभाव और विमृश्यकारित्वरूप कारण का समर्थन होता है । अतः कार्य से कारणसमर्थनरूप अर्थान्तरन्यास का यह उदाहरण है ।

उक्तानि सर्वाण्युदाहरणानि साधर्म्यमूलकान्येव । वैधर्म्यमूलान्युदाहरणानि यथायथं मृग्याणि ।

उक्त सभी उदाहरण साधर्म्यमूलक अर्थान्तरन्यास के हैं । वैधर्म्यमूलक उदाहरण भी इसी प्रकार समझना चाहिए ।

पर्यायोक्तिः किंवा पर्यायोक्तम्—(चन्द्रा ५-६८)—

'कार्याद्यैः प्रस्तुतैरुक्तैः पर्यायोक्तिः प्रचक्षते।
तृणान्यंकुरयामास विपक्षनृपसद्मसु॥'

प्रस्तुतानि कार्यादीन्युक्त्वा यत्र प्रस्तुतानामेव कारणादीनामवगमो भवति तत्र पर्यायोक्तिर्नामलङ्कारो भवतीत्यर्थः। वक्तव्यार्थं साक्षादनुक्त्वा पर्यायेण = प्रकारान्तरेण कथनात् पर्यायोक्तमित्यन्वर्थमलङ्कारनाम।

पर्यायोक्ति किंवा पर्यायोक्त (चन्द्रा० ५-६८) प्रस्तुत कार्य आदिका शब्दतः वर्णन करनेसे जहाँ पर प्रस्तुत कारण आदिका बोध होता हो वहाँ पर्यायोक्ति नाम का अलङ्कार होता है। वक्तव्य अर्थ को साक्षात् न कहकर पर्याय से अर्थात् प्रकारान्तर से कहना ही पर्यायोक्त है।

उदाहरति-तृणानीति। कश्चिद्राजा स्वपराक्रमेण शत्रून् जित्वा तान् कान्दिशीकान् चकारेति वक्तव्यार्थं तथाऽनुक्त्वा विपक्षनृपसद्मसु शत्रुराजगृहेषु शून्यत्वात् तृणानि अंकुरितवान्। शून्यानि शत्रुराजसदनानीत्यादिकथनात् पर्यायेणैव कथनं वर्तते इति पर्यायोक्तोदाहरणमिदम्। अत्र राजकृतशत्रुपराजयस्य कार्यं शत्रुगृहे तृणांकुरोत्पत्तिः तदुपादानेन वर्णनीयत्वेन प्रस्तुतस्य राजकृतशत्रुपराजयरूपस्य कारणस्य प्रतीतिर्भवति। अत्र कार्यकारणयोरुभयोरपि प्रस्तुतत्वादप्रस्तुतप्रशंसातो वैलक्षण्यम्।

उदाहरण जैसे—किसी राजाने अपने पराक्रमसे शत्रुको जीतकर उनको नगरोंसे भगाया इस अर्थको इसी रूपसे न कहकर 'इस राजाने अपने शत्रुओंके प्रसादों में घास उगवाया।' अर्थात् शत्रुओं के घर उजाड़ हो गये और वहाँ घास-पात जम गई। यहां पर 'राजाने शत्रुओंको जीत लिया' यह कारण गम्य है, इसका कार्य-शत्रु गृहमें तृणांकुरोत्पत्ति शब्दतः वर्णित है। राजप्रभाववर्णन का अङ्ग होनेके कारण और कार्य दोनों प्रस्तुत हैं, कार्यसे कारणकी प्रतीति होती है अतः यह पर्यायोक्तका उदाहरण है। यहां पर कार्य और कारण दोनों प्रस्तुत होने से अप्रस्तुत-प्रशंसासे भेद है।

पर्यायोक्तम्—(साहि० १०-६०)—

'पर्यायोक्तं यदा भङ्ग्या गम्यमेवाभिधीयते।'

गम्यं व्यङ्ग्यमेव यत्र भङ्ग्या = केनापि चमत्कारिणा प्रकारान्तरेण कथ्यते तत्र पर्यायोक्तं नामालकारो भवतीत्यर्थः।

पर्यायोक्त (साहि० १०-६०)-गम्य अर्थात् व्यङ्ग्य पदार्थ ही जहाँपर किसी चमत्कारजनक प्रकारान्तर से कहा जाय वहाँ पर पर्यायोक्त नाम का अलङ्कार होता है।

उदाहरणं यथा—(रघुवंशे ६-२८)

अनेन पर्यासयताऽश्रु विन्दून् मुक्ताफलस्थूलतमान् स्तनेषु।
प्रत्यर्पिताः शत्रु विलासिनीनामाक्षेपसूत्रेण विनैव हाराः॥

अत्र राजवर्णनप्रस्तावे राजकृतशत्रु मारणं व्यङ्ग्यम्, तच्च शत्रु स्त्री नयनाश्रु धारासातत्यवर्णनद्वाराऽभिहितम् तथा च गम्यस्य शत्रुमारणस्य चमत्कारिणा प्रकारान्तरेण वर्णनात् पर्यायोक्तमिदम्। इह कारणकार्ययोर्गम्यवाच्ययोरुभयोरपि प्रस्तुतत्वमिति नात्राप्रस्तुतप्रशंसाऽवसरः।

उदाहरण जैसे रघुवंश षष्ठसर्गमें (श्लो० ६-२८) इस राजाने मौक्तिकके समान बड़े-बड़े अश्रु बिन्दुओंको शत्रु स्त्रियोंके वक्षःस्थलपर फैलाते हुए मानो विना सूत्र के हार उनको पहिनाये। यहाँ पर राजवर्णन प्रस्तावमें राजकृतशत्रुमारण व्यङ्ग्य है। वह शत्रु स्त्रियों के नयनाश्रु धारा के सातत्य का शब्दतः वर्णन करके कहा गया है। एतावता गम्य शत्रु मारण का चमत्कारजनक प्रकारान्तरसे वर्णन करने से यह पर्यायोक्त का उदाहरण है। यहाँ पर कारण और कार्यरूपी गम्य और वाच्य दोनों प्रस्तुत होने से अप्रस्तुतप्रशंसालङ्कारका अवसर नहीं है।

विरोधाभासः—(चन्द्रा० ५-७३)—

'श्लेषादिभूर्विरोधश्चेद्विरोधाभासता मता।
अप्यन्धकारिणाऽनेन जगदेतत्प्रकाश्यते॥'

वास्तविकविरोधाभावेऽपि श्लेषादिमहिम्ना यात्रापाततो विरोधः इव प्रतीयते तत्र विरोधस्याभासो यत्रेति व्युत्पत्त्याऽन्वर्थनामा विरोधाभासालंकारो भवति।

विरोधाभास (चन्द्रा० ५-७३)-वास्तविक विरोध न होनेपर भी श्लेष आदि कारणोंसे जहाँपर आपाततः विरोध सा मालूम होता है वहाँ पर 'विरोधका है आभास जिसमें' इस व्युत्पत्तिसे अन्वर्थनामा विरोधाभास नामका अलङ्कार होता है।

उदाहरति—अप्यन्धकारिणेति । अन्धकारिणा अन्धकनामकदैत्यवैरिणा अन्धकारयुक्तेन वा अनेन एतत् जगत् प्रकाश्यते इत्यर्थः। अत्र 'अन्धकारिणा' इत्यंशे श्लेषः । अन्धकारयुक्तेनेत्यर्थे परिगृहीते तस्य जगत्प्रकाशकत्वं विरुद्धमिव प्रतीयते अन्धकदैत्यवैरिणेति द्वितीयार्थेन विरोधपरिहारः ।

उदाहरण जैसे—'इस अन्धकारि के द्वारा जगत् प्रकाशित होता है ।' अन्धकारि-पद में श्लेष है । अन्धक नामक दैत्य के शत्रु किंवा अन्धार जिसमें है ये दो अर्थ होते हैं । यहां पर दूसरा अर्थ अन्धकारयुक्त पुरुष के द्वारा जगत् प्रकाशित होता है ऐसा कहने से विरोध प्रतीत होता है जो स्वयं अन्धकार से युक्त है वह जगत् को कैसे प्रकाशित करेगा ? अन्धक दैत्य के वैरी भगवान् शिव से जगत् प्रकाशित होता है इस अर्थ से विरोध का परिहार होता है ।

विरोधाभास—(साहि० १०-६८)—

'विरुद्धमिव भासेत विरोधोऽसौ········' ।

वस्तुतो विरोधाभावेऽपि यत्र कारणविशेषवशात् विरोधः प्रतीयते पर्यवसाने तस्य परिहारोऽपि भवति तत्र विरोधाभासनामाऽलङ्कारो भवति ।

विरोधाभास (साहि० १०-६८)—जहांपर वास्तविक विरोध न होने पर भी किसी कारणविशेषसे विरोध प्रतीत होता है और पर्यवसानमें उसका परिहार होता है वहां विरोधाभास नाम का अलङ्कार होता है ।

उदाहरणं यथा—

'इयं विशालाऽपि च भूरिशाला विराजते संस्कृतपाठशाला' ।

अत्र विशालापदस्य विगता शाला यस्या इत्यर्थकरणेन शालारहितेति प्रतीतेः शालारहिताऽपि भूरिशाला कथं स्यादिति विरोधः । विशाला इत्यस्य विस्तीर्णा इत्यर्थकरणेन विरोधपरिहारः, तथा च आपाततः प्रतीयमानस्य विरोधस्य पर्यवसाने परिहारात् विरोधाभासोदाहरणमिदम् ।

उदाहरण जैसे—'यह विशाला होती हुई भी भूरिशाला संस्कृतपाठशाला शोभायमान होती है ।' यहां पर 'विशाला' पद का—'नहीं है शाला जिसमें' ऐसा अर्थ करनेसे 'शालारहित' ऐसी प्रतीति होती है । जो शालारहित है वह

भूरिशाला कैसे हो सकेगी–यह विरोध है। 'विशाला' पदका 'विस्तीर्ण' ऐसा अर्थ करने से विरोध का परिहार होता है। अतः आपाततः प्रतीयमान विरोध का अन्तमें परिहार होने से यह विरोधाभास का उदाहरण है।

विभावना—(चन्द्रा० ५-७५)—

विभावना विनाऽपि स्यात् कारणं कार्यजन्म चेत्।
पश्य लाक्षारसासिक्तं रक्तं तच्चरणद्वयम्'॥

कारणं विनैव कार्योत्पत्तिर्यत्र वर्ण्यते तत्र विभावनाऽलङ्कारो भवतीत्यर्थः।

विभावना (चन्द्रा५-७५ —कारण के विना जहांपर कार्यको उत्पत्ति का वर्णन किया जाता है वहां विभावनालङ्कार होता है।

उदाहरति–पश्येति। लाक्षारसेन असिक्तमपि रक्तं तच्चरणद्वयं पश्येत्यन्वयः। अत्र रक्ततां प्रति लाक्षारससेको हेतुः, तं विनाऽपि तच्चरणद्वये रक्ततावर्णनात् लाक्षारससेकरूपकारणं विनैव चरणरक्तारूपकार्यसद्भाववर्णनात् विभावनालङ्कारः। वस्तुतस्तु कारणं विना कार्यं नैव भवतीति चरणगतः स्वाभाविकी रक्तिमाऽस्तीति नानुपपत्तिः।

उदाहरण जैसे—'लाक्षारस के सम्बन्ध के विना ही उसके दोनों चरण लाल हैं देखो।' लाल होनेमें लाक्षारस का सम्बन्ध हेतु है उसके विना ही चरणद्वयमें रक्तता वर्णित है यहां पर लाक्षारससेकरूप कारणके विना चरणरक्तारूप कार्य का सद्भाव वर्णित है। अतः यह विभावनालङ्कारका उदाहरण हैं। वास्तवमें किसी कारण के विना कोई कार्य नहीं हो सकता। यहां पर भी चरण में स्वाभाविक रक्तिमा है अतः कोई अनुपपत्ति नहीं है।

विभावना—(साहि० १०-६६)—

'विभावना विना हेतुं कार्योत्पत्तिर्यदुच्यते'।

हेतुं विना कार्यस्योत्पत्तिर्यद्युच्यते तर्हि विभावनेत्यर्थः।

विभावना—(साहि० १०-६६)—किसी हेतुके विना कार्य की उत्पत्ति का यदि वर्णन किया जाय तो विभानालङ्कार होता है।

उदाहरणं यथा—'अनायासकृशं मध्यमशङ्कतरले दृशौ।
अभूषणमनोहारि वपुर्भाति मृगीदृशः॥

यत्र मध्यस्य कृशत्वे आयासः, दृशोस्तरलत्वे शङ्का मनोहारित्वे भूषणानि हेतवः सन्ति, तदभावेऽपि मध्ये कार्श्यं, दृशोस्तरलत्वं, वपुषि मनोहारित्वं च वर्णितमिति कारणं विनैव कार्योत्पत्तिवर्णनात् विभावनोदाहरणमिदम्। सर्वेषामेवैषां कार्याणां यौवनमेव हेतुरस्तीति नानुपपत्तिः।

उदाहरण जैसे—'इस नायिका का मध्यभाग बिना आयास के ही कृश है, इसके नेत्र बिना शङ्काके ही चञ्चल हैं और इस मृगाक्षी का शरीर बिना अलङ्कारों के ही सुन्दर है।' यहाँ पर मध्यभागके कृशत्व में आयास, नेत्रोंके अञ्चलत्वमें शङ्का, शरीरके सौन्दर्यमें अलङ्कार हेतु है। उसके अभावमें भी मध्यमें कृशता, दृष्टिमें चाञ्चल्य और शरीरमें सौन्दर्य का वर्णन किया है। अतः इस उदाहरणमें कारण के बिना ही कार्योत्पत्ति वर्णित होने से यहाँ पर विभावानालङ्कार है। पूर्वोक्त सब कार्यों में वस्तुतः तारुण्य ही हेतु है अतः कुछ भी अनुपपत्ति नहीं है।

विशेषोक्तिः—(चन्द्रा० ५-७६)

विशेषोक्तिरनुत्पत्तिः कार्यस्य सति कारणे।
नमन्तमपि धीमन्तं न लङ्घयति कश्चन'॥

कारणे सत्यपि कार्यस्य अनुत्पत्तिवर्ण्यते चेत् विशेषोक्तिर्नाम अलंकारो भवतीत्यर्थः।

विशेषोक्तिः—(चन्द्रा० ५-७६)—कारण के रहते हुए भी यदि कार्य की अनुत्पत्ति—कार्य का न होना, वर्णन किया जाय तो विशेषोक्ति नामका अलङ्कार होता है।

उदाहरति—नमन्तमिति। नमन्तमपि धीमन्तं न कोऽपि लंघयतीत्यन्वयः। नतो हि लंघयितुं शक्यते, खर्वत्वात् अत्र नतत्वरूपे कारणे सत्यपि लंघनरूपकार्यस्यानुत्पादात् विशेषोक्तिरलंकारः।

उदाहरण जैसे—'विनय के कारण नम्र अर्थात् झुके हुए ऐसे भी बुद्धिमान् पुरुषको कोई लांघ नहीं सकता।' जो नम्र है वही लांघा जा सकता है। क्योंकि वह खर्व अर्थात् बौना हो जाता है। प्रकृत उदाहरण में नतत्व नम्रता रूप कारण वर्तमान है तो भी लंघन रूप कार्य उत्पन्न नहीं हुआ। अतः यहाँ पर विशेषोक्ति अलङ्कार है।

विशेषोक्तिः—(साहि० १०-६७)—

'सति हेतौ फलाभावे विशेषोक्तिः···'।

हेतौ कारणे सत्यपि फलस्य कार्यस्याभावो वर्ण्यते चेद्विशेषोक्तिर्ना

मालंकार इत्यर्थः। कारणसत्त्वेऽपि कार्यानुत्पत्तिवर्णनं विशेषोक्तिरिति फलितम्।

विशेषोक्तिः—(साहि० १०-६७)—हेतु अर्थात् कारण के रहते हुए भी फल अर्थात् कार्यका यदि अभाव हो तो विशेषोक्ति अलङ्कार होता है। कारणके रहते हुए भी कार्य की अनुत्पत्ति हो तो विशेषोक्ति होती है यह फलितार्थ है।

उदाहरणम्—'धनिनोऽपि निरुन्मादा युवानोऽपि न चञ्चलाः।
प्रभवोऽप्यप्रमत्तास्ते महामहिमशालिनः॥

अत्र धनित्वयुवत्वप्रभुत्वरूपेषु कारणेषु सत्स्वपि उन्मादचाञ्चल्यप्रमादरूपकार्याणामनुत्पत्तिर्वर्णितेति कारणसत्त्वेऽपि कार्याभाववर्णनाद्विशेषोक्तेरुदाहरणमिदम्। विशेषस्य उक्तिरिति विग्रहात्कारणसत्त्वेऽपि कार्याभावरूपस्य विशेषस्य उक्तेरन्वर्थलंकारनाम। वस्तुतस्तुकारणसत्त्वे कार्यं भवत्येव। अत्रापि महामहिमशालित्वाद्धेतोरुन्मादादयो न भवन्तीति न काऽप्यनुपपत्तिः उदाहरणान्तरं यथा शाकुन्तले—

तस्याः पुष्पमयी शरीरलुलिता शय्या शिलायामियं,
कान्तो मन्मथलेख एष नलिनीपत्रे नखैरर्पितः।
हस्ताद् भ्रष्टमिदं विसाभरणमित्यासज्यमानेक्षणो,
निर्गन्तुं सहसा न वेतसगृहादीशोऽस्मि शून्यादपि॥

अत्र वेतसगृहे प्रियाशून्यत्वरूपे निर्गमनकारणे सत्यपि 'निर्गन्तुं न ईशोऽस्मि' इति कथनात् निर्गमनरूपकार्याभावाद्विशेषोक्तिरियम्।

उदाहरण जैसे—'महामहिमायुक्त वे लोग धनी होते हुए भी उन्माद से रहित हैं, तरुण होते हुए भी चञ्चल नहीं हैं, सामर्थ्यवान् होते हुए भी प्रमादी नहीं हैं। यहाँ पर धनी होना, तरुण होना और सामर्थ्यवान् होना इन कारणों के रहते हुए भी उन्माद, चाञ्चल्य तौर प्रमाद रूप कार्यों की अनुत्पत्ति वर्णित है अतः कारण के होते हुए भी कार्यानुत्पत्ति का वर्णन होनेसे विशेषोक्ति का यह उदाहरण है।' विशेष की जहाँपर उक्ति अर्थात् वर्णन हो वह विशेषोक्ति कही जाती है। प्रकृत अलङ्कार में कारण के रहते हुए भी कार्याभाव रूप विशेष की उक्ति होनेसे इस अलङ्कार का 'विशेषोक्ति' अन्वर्थ नाम है। वास्तव में कारण के रहते कार्य अवश्य ही होता है। यहाँपर वर्णनीय व्यक्ति महामहिमशाली होने से उन्मादादि कार्य नहीं हुए अतः कोई अनुपपत्ति नहीं है।

दूसरा उदाहृण जैसे शकुन्तला में राजाकी उक्ति–'शकुन्तला के शरीर-स्पर्श से कुम्भलाये हुए फूलों की यह शय्या इस शिलातलपर है, कमलिनी के पत्ते पर उसके नखों से लिखा हुआ यह सुन्दर प्रेमपत्र है, उसके हाथसे गिरा हुआ यह मृणालाभरण हैं, इन सब उपकरणोंमें मेरी दृष्टि बद्ध हो गई है अतः मैं इस प्रियारहित ऐसे भी लतागृह से सहसा निकल जाने में असमर्थ हूँ।' यहाँ पर लतागृह से प्रियाशून्यत्वरूप निर्गमनकारण के रहते हुए भी निर्गमनरूप कार्य के न होने से विशेषोक्ति का यह उदाहरण है।

असङ्गतिः—(चन्द्रा० ५-७७)—

'आख्याते भिन्नदेशत्वे कार्यहेत्वोरसङ्गतिः ।
त्वद्भक्तानां नमत्यङ्गं भङ्गमेति भवक्लमः' ॥

कार्यहेत्वोः कार्यकारणयोः भिन्नदेशत्वे वैयधिकरण्ये आख्याते वर्णिते सति असङ्गतिर्भवतीत्यक्षरार्थः । कार्यकारणयोर्विभिन्नाधिकरणावस्थितिवर्णनमसङ्गतिरिति फलितम् ।

असङ्गति—(चन्द्रा० ५-७७)—कार्य और कारणों का वैयधिकरण्य अर्थात् भिन्नदेशत्व होने से असङ्गति नाम का अलङ्कार होता है। कार्य और कारण यदि भिन्न अधिकरणोंमे वर्णित हों तो विशेषोक्ति होती है यह फलितार्थ है ।

उदाहरति—त्वद्भक्तानामिति । भङ्गं प्रति नमनं कारणम्, तथा च यत्रैव नमनं तत्रैव भङ्ग इत्युचितम्' अत्र तु भगवद्भक्तानामङ्गे नमनम्, भङ्गस्तु भवक्लमे इति नमनभङ्गयोः कार्यकारणयोर्वैयधिकरण्यवर्णनादसङ्गतेरुदाहरणमिदम् । इदमेवात्रासाङ्गत्यं नाम, यत् कार्यकारणयोर्भिन्नदेशत्वम् ।

उदाहरण जैसे—'तुम्हारे भक्तों का अङ्ग नम्र होता है और संसार भङ्ग होता है।' सामान्यतः व्यवहारमें जो झुकता है वही टूटता है यह नियम है। यहाँपर भगवद्भक्तों के अङ्ग में नमन (झुकना) है और संसार दुःख में भङ्ग (टूटना) है अतः नमनभङ्गरूपकार्यकारणों का वैयधिकरण्य वर्णित होने से असंगति का यह उदाहरण है। कार्य और कारणों का भिन्न देशों में रहना ही असाङ्गत्य है।

असंङ्गति—(साहि० १०-६९)—

'कार्यकारणयोर्भिन्नदेशतायामसङ्गतिः ।'

कार्यस्य कारणस्य च विभिन्नदेशवृत्तित्वं वर्ण्यते चेत्तदाऽसङ्गति-र्नामालङ्कारो भवतीत्यर्थः। एकस्मिन्नधिकरणे कार्यकारणयोरविद्यमा-नत्वमसङ्गतिरिति फलितम्।

उदाहरणम्—

असङ्गति—(साहि० १०-६९) कार्य और कारण का पृथक् आधार में रहना यदि वर्णन किया जाय तो असङ्गति नाम का अलङ्कार होता है। एक अधिकरण में कार्यकारण की सत्ता का अभाव वर्णन करने से असङ्गति होती है यह फलितार्थ है।

सा बाला वयमप्रगल्भमनसः, सा स्त्री वयं कातराः,
सा पीनोन्नतिमत्पयोधरयुगं धत्ते सखेदा वयम्।
साऽऽक्रान्ता जघनस्थलेन गुरुणा गन्तुं न शक्ता वयं,
दोषैरन्यजनाश्रयैरपटवो जाताः स्म इत्यद्भुतम्॥

अत्र कारणानां नायिकागतत्वं कार्याणां चात्मगतत्वमिति भिन्न-देशत्वादससङ्गतेरुदाहरणमिदम्।

उदाहरण जैसे—यह बाला है किन्तु हम लोगों का चित्त प्रगल्भ है, वह स्त्री है किन्तु हम लोग कातर हैं, पुष्ट और उन्नत स्तनों को वह धारण करती हैं किन्तु हम लोग सखेद हैं, गुरुजघनस्थलसे वह आक्रान्त है किन्तु हम लोग चलने में असमर्थ हैं, इस प्रकार दूसरों के दोषों से हम लोग असमर्थ हो रहे हैं यह आश्चर्य है।' यहाँ पर कारणों की आधार नायिका है और कार्यों के आधार वक्ता हैं अतः कार्यकरणों की भिन्नदेशता होने से यह असङ्गति का उदाहरण है।

अन्योन्यम्—(चन्द्रा० ५-५२)—

'अन्योन्यं नाम यत्र स्यादुपकारः परस्परम्।
त्रियामा शशिना भाति शशी भाति त्रियामया'॥

यत्र द्वयोः परस्परमुपकारकत्वं भवेत्तत्रान्योन्यं नामालङ्कारो भवतीत्यर्थः।

अन्योन्य—(चन्द्रा० ५-५२)-जहाँ पर दोनों में परस्परोपकारकत्व का वर्णन किया जाय वहाँ अन्योन्य नाम का अलङ्कार होता है।

उदाहरति—त्रियामेति। त्रियामा रात्रिः शशिना चन्द्रेण भाति शोभते, एवं शशी चन्द्रः त्रियामया रात्र्या भाति शोभते। अत्र रात्रि-चन्द्रमसोः परस्परशोभाजनकत्वेनोपकारकत्वादन्योन्यनामालङ्कारः।

उदाहरण जैसे—'रात्रि चन्द्रसे शोभित होती है और चन्द्र रात्रिसे शोभित

होता है।' यहाँ पर रात्रि और चन्द्र परस्पर शोभाजनक होने से परस्परोपकारण हैं अतः यह अन्योन्य का उदाहरण है।

अन्योन्यम्—(साहि० १०-७२)—

'अन्योन्यमुभयोरेकक्रिययोः करणं मिथः'।

उभयोर्मिथ एकक्रियाकारकत्वं चेदन्योन्यं नामालङ्कारो भवती त्यर्थः।

अन्योन्य—(साहि० १०-७२)–जहाँ पर दो परस्पर एक क्रिया के कर्त्ता हों। वहाँ पर अन्योन्य नाम का अलङ्कार होता है।

उदाहरणं यथा शिशुपालवधे (६-३३)—

रजनीमवाप्य रुचमाप शशी सपदि व्यभूषयदसावपि ताम।
अविलम्वितक्रममहो महतामितरेतरोपकृतिमच्चरितम् ॥

अत्रापि रजनीशशिनोः परस्परशोभाजननैकक्रियाकारकत्वादन्योन्यालङ्कारः।

उदाहरण जैसे—शिशुपालवधके नवम सर्ग में (श्लो० ३३)–'चन्द्र रात्रि को प्राप्त कर शोभित हुआ और रात्रिने भी तत्काल ही चन्द्र को भी भूषित किया। विना विलम्व के परस्पर का उपकार करना ही वड़े लोगों के चरित्र की विशेषता है। यहाँ पर रात्रि और चन्द्र में परस्पर शोभाजननरूप एक क्रियाकारकत्व होने से अन्योन्यालंकार का यह उदाहरण है।

प्रतीपम्—(चन्द्रा० ५-९६)—

'प्रतीपमुपमानस्य हीनत्वमुपमेयतः।
दृष्टं चेद्वदनं तस्याः किं पद्मेन किमिन्दुना' ॥

उपमानस्य उपमेयापेक्षया हीनत्वमपकृष्टत्वं, न्यूनगुणत्वं वर्ण्यते चेत्तदा प्रतीपं नामालंकारो भवतीत्यर्थः। उपमानस्याधिकगुणवत्त्वम्, उपमेयस्याल्पगुणवत्त्वं च प्रसिद्धम्, इह तु तद्विपरीतं वर्ण्यते इति प्रतीपम् विरुद्धमित्यन्वर्थमलङ्कारनाम।

प्रतीप—(चन्द्रा० ५-९६)—उपमान में उपमेय की अपेक्षा हीनत्व अर्थात् न्यूनगुणत्व यदि वर्णन किया जाय तो प्रतीप नाम का अलङ्कार होता है। उपमान में अधिक गणों का होना उपमेय से न्यून गुणों का होना प्रसिद्ध है। यहाँ पर इसके विपरीत वर्णन किया है। अतः प्रतीप-विरुद्ध इस प्रकार यह अन्वर्थ अलङ्कार है।

उदाहरणमाह—इष्टमिति। तस्याः वदनं दृष्टं चेत् पद्मेन इन्दुना वा किम् ? न प्रयोजनमित्यर्थः। अत्र पद्ममिन्दुश्चोपमानम्, तदपेक्षया उपमेयस्य तद्वदनस्य महत्त्वं वर्णितमिति उपमेयापेक्षया उपमानस्य हीनत्ववर्णनात् प्रतीपोदाहरणमिदम्।

उदाहरण जैसे—'यदि उसका मुख देखा जाय तो कमल किंवा चन्द्र व्यर्थ हैं।' यहाँ पर कमल और चन्द्र उपमान हैं, तदपेक्षया उपमेय-नायिकावदन का महत्त्व वर्णन किया है अतः उपमेयापेक्षया उपमानमें हीनता का वर्णन होने से यह प्रतीपालङ्कार का उदाहरण है।

प्रतीपम्—(साहि० १०-८७)—

'प्रसिद्धस्योपमानस्योपमेयत्वप्रकल्पनम्।
निष्फलत्वाभिधानं वा प्रतीपमिति कथ्यते'॥

काव्य-संसारे उपमानत्वेन प्रसिद्धस्य चन्द्रपद्मादेः वर्णनीयकान्तामुखापेक्षया हीनत्वद्योतनाय उपमेयत्वेन यत् प्रकल्पनं तत् प्रसिद्धोपमानोपमेयभावप्रातिलोम्यात् प्रतीपमिति कथ्यते। तथा प्रसिद्धस्योपमानस्य निष्फलत्वाभिधानं चेत्तदाऽपि प्रतीपमिति कथ्यते। एतावता प्रसिद्धोपमानोपमेयभावप्रातिलोम्ये, प्रसिद्धस्योपमानस्य निष्फलत्वाभिधाने वा प्रतीपमिति भावः।

प्रतीप—(साहि० १०-८७)—काव्यसंसार में उपमानरूप से प्रसिद्ध चन्द्र, पद्म आदि का वर्णनीय कान्तामुख की अपेक्षा हीनत्व द्योतन करने के लिये उपमेयरूपसे जो कल्पना की जाती है वही प्रसिद्ध उपमानोपमेयप्रातिलोम्य के कारण प्रतीप कही जाती है। इसी प्रकार प्रसिद्ध उपमान के निष्फलत्व का अभिधान यदि किया जाय तो भी प्रतीप अलङ्कार कहा जाता है। एतावता प्रसिद्धोपमानोपमेयभाव के प्रातिलोम्य में और प्रसिद्ध उपमान के निष्फलत्वाभिधान में प्रतीप अलङ्कार होता है।

प्रसिद्धस्योपमानस्योपमेयत्वकल्पने प्रतीपं यथा—

'यत्वन्नेत्रसमानकान्ति सलिले मग्नं तदिन्दीवरम्' इति।

अत्र वस्तुतो नेत्रापेक्षयोपमानत्वेन प्रसिद्धस्येन्दीवरस्य 'त्वन्नेत्रसमानकान्ति' इतिकथनेनोपमेयत्वं कल्पितमिति प्रतीपप्रथमप्रकारोदाहरणम्।

प्रसिद्ध उपमान के उपमेयत्वकल्पना में प्रतीप का उदाहरण जैसे—'तुम्हारे

नेत्र के समान कान्ति वाला जो नीलकमल था वह जल में डूब गया ।' यहाँ पर वास्तव में नेत्र की अपेक्षा उपमानत्वेन प्रसिद्ध जो नील कमल उसको 'तुम्हारे नेत्र के समान कान्ति वाला' ऐसा कहने से उपमेय बनाया है अतः यह प्रतीप के प्रथम प्रकार का उदाहरण है ।

प्रसिद्धस्योपमानस्य निष्फलत्वाभिधाने प्रतीपं यथा—

'तद्वक्त्रं यदि मुद्रिता शशि-कथा हा हेम, सा चेद् द्युतिः' इति ।

अत्र मुखापेक्षयोपमानत्वेन प्रसिद्धस्य शशिनः 'मुद्रिता शशिकथा' इति कथनेन निष्फलत्वाभिधानात् द्वितीयप्रतीपप्रकारोदाहरणम् ।

प्रसिद्ध उपमान के निष्फलत्वाभिधान में प्रतीप का उदाहरण जैसे—'यदि उसका मुख है तो चन्द्र का नाम लेने की जरूरत ही नहीं । यहां पर मुख की अपेक्षा उपमानत्वेन प्रसिद्ध चन्द्रका 'नाम लेने की जरूरत नहीं' ऐसा कहने से निष्फलत्वाभिधान किया है अत; द्वितीय प्रकार के प्रतीप का उदाहरण है ।

स्वभावोक्तिः—(चन्द्रा० ५-१०७)—

'स्वभावोक्तिः स्वभावस्य जात्यादिषु च वर्णनम् ।
कुरङ्गैरुत्तरङ्गाक्षैः स्तब्धकर्णैरुदीक्ष्यते' ॥

सिंहव्याघ्रादिजातीनां चेष्टादेः स्वभावस्य च वास्तविकं वर्णनं क्रियते चेत् स्वभावोक्तिर्नामालङ्कारो भवतीत्यर्थः ।

स्वभावोक्ति (चन्द्रा० ५-१०७)—सिंह, व्याघ्र आदि जातियों की चेष्टा आदि का तथा स्वभाव का यदि वास्तविक वर्णन किया जाय तो स्वभावोक्ति नाम का अलङ्कार होता है ।

उदाहरणं-कुरङ्गैरिति । मृगैश्चञ्चलनेत्रैर्निश्चलकर्णैर्विलोक्यते इति मृगजातिस्वभावचेष्टयोर्वर्णनात् स्वभावोक्तेरुदाहरणमिदम् ।

उदाहरण जैसे—'मृग नेत्रों को चञ्चल करते हुए तथा कर्णों को निश्चल रखते हुए देखते हैं ।' यहां पर मृगजाति के स्वभाव और चेष्टा का वर्णन होने से यह स्वभावोक्ति का उदाहरण है ।

स्वभावोक्ति—(साहि० १०-९२)

'स्वभावोक्तिर्दुरूहार्थस्वक्रियारूपवर्णनम् ।'

साधारणैर्ज्ञातुमशक्यानां सहृदयकविमात्रसंवेद्यानां बालपशुपक्ष्यादि-

चेष्टानां स्वभावस्य च याथार्थ्येन वर्णनं क्रियते चेत् स्वभावोक्तिरलङ्कारो भवतीत्यर्थः ।

स्वभावोक्ति (साहि० १०·९२)—साधारण लोगों को जानने के लिए अशक्य, केवल सहृदय कवि लोगों को ही संवेद्य बाल, पशु, पक्षी आदि के चेष्टाओं का और स्वभावों का वास्तविक वर्णन किया जाय तो स्वभावोक्ति नाम का अलङ्कार होता है ।

उदाहरणं यथा शाकुन्तले—

ग्रीवाभंगाभिरामं मुहुरनुपतति स्यन्दने दत्तदृष्टिः
पश्चार्द्धेन प्रविष्टः शरपतनभयाद् भूयसा पूर्वकायम् ।
शष्पैरर्धावलीढैः श्रमविवृतमुखभ्रंशिभिः कीर्णवर्त्मा
पश्योदग्रप्लुतत्वाद् वियति वहुतरं स्तोकमुर्व्यां प्रयाति ॥

अत्र भयसंत्रस्तहरिणस्वभाववर्णनात् स्वभावोक्तिः ।

उदाहरण जैसे शाकुन्तल में—अपनी ग्रीवा को मरोड़ता हुआ, पीछे आने वाले रथपर दृष्टि रखता हुआ, वाण लगने के डर से अपने शरीर के उत्तरार्ध के अधिक भागको शरीर के पूवार्ध में प्रविष्ट करता हुआ, आधे खाये हुए और श्रमवश खुले हुए मुखवाला मृग ऊंची उड़ान लेने के कारण अधिकतर आकाश में और वहुत थोड़ा पृथ्वी में चलता है, देखो । यहाँ पर बाण-प्रहार से डरे हुए हरिण के स्वभाव का यथार्थ वर्णन किया है अतः यह स्वभावोक्ति का उदाहरण है ।

चन्द्रालोके संसृष्टेः लक्षणं पृथङ् नोपपादितमिति साहित्यदर्पणीयमेव संसृष्टिलक्षणमुच्यते—

चन्द्रालोक में संसृष्टिका लक्षण पृथक् नहीं कहा है अतः साहित्यदर्पण का संसृष्टि लक्षण कहते हैं –

संसृष्टिः साहि० १०–९८)

'मिथाऽनपेक्षयैतेषां स्थितिः संसृष्टिरुच्यते' ।

एतेषां—पूर्वोक्तानामनुप्रासोपमादीनामलंकाराणां परस्परनैरपेक्ष्येण या स्थितिरवस्थानं सा संसृष्टिरलंकार इत्युच्यत इत्यर्थः । परस्परं पार्थक्येन ज्ञायमानानामलंकाराणामेकस्मिन्पद्ये वाक्ये वा यदि समावेशो भवेत्तदा संसृष्टिर्नाम अलंकारो भवतीति फलितम् । यथा प्रक्षालितानां तिलानां तण्डुलानां च सम्मेलने कृतेऽपि 'इमे तिलाः' 'इमे तण्डुकाः'

इति पार्थक्येनावभासो भवति तथैव एकस्मिन् पद्ये निवेशितानामलङ्काराणां पार्थक्येन ज्ञाने 'तिलतण्डुल'–न्यायेन संसृष्टिनामाऽलङ्कारो ज्ञातव्य इति निष्कर्षः ।

संसृष्टि (साहि० १०-९८)–पूर्वोक्त अनुप्रास-उपमा-आदि अलङ्कारोंकी परस्पर की अपेक्षा किये विना यदि अवस्थिति हो तो उसको संसृष्टि अलङ्कार कहा जाता है । परस्पर पृथक् रूपसे जानने लायक अलङ्कारों का एक पद्यमें किंवा वाक्यमें यदि समावेश हो तो वह संसृष्टि नामक अलङ्कार कहा जाता है यह फलितार्थ है । जैसे धोये हुए तिल और तण्डुलों को मिलाने पर भी ये तिल हैं और ये तण्डुल है ऐसा पार्थक्यसे बोध होता है वैसे ही एक ही श्लोक में निवेशित अलङ्कारों का 'तिलतण्डुल'—न्याय से पृथक् ज्ञान होने से संसृष्टि नामका अलङ्कार होता है यह निष्कर्ष है ।

उदाहरण यथा शिशुपालवधे (१-२५)—

सितं सितिम्ना सुतरां मुनेर्वपुर्विसारिभिः सौधमिवाथ लम्भयन् ।
द्विजावलिव्याजनिशाकरांशुभिः शुचिस्मितां वाचमवोचदच्युतः ॥

अत्र सौधमिव' इति उपमा, 'सितिम्ना लम्भयन्' इति असम्बन्धेऽपि सम्बन्धवर्णनरूपा अतिशयोक्तिः, 'द्विजावलिव्याजनिशाकरे' त्यादौ व्याजपदोपादानात् कैतवापह्नुतिश्चेति उपमाऽतिशयोक्त्यपह्नुतीनां परस्परं नैरपेक्ष्येण समावेशात् 'तिलतण्डुल'-न्यायेन पार्थक्येन प्रतीतेश्च संसृष्टिरलङ्कारः ।

उदाहरण जैसे शिशुपालवधके प्रथम सर्गमें (श्लो० १–२५)—'भगवान् कृष्ण फैलने वाले अपने दन्तपंक्तिरूप चन्द्र के किरणों से स्वभावतः शुभ्र ऐसे नारदजी के शरीर को सौध के समान फिर भी शुभ्रत्व से युक्त करते हुए मन्दहास्यपूर्वक भाषण करने लगे ।' यहाँपर 'सौधके समान' यह उपमा है, 'शुभ्रत्वसे युक्त करते हुए' यह सम्बन्ध न रहते हुए भी सम्बन्धवर्णनरूपा अतिशयोक्ति है, 'द्विजावलिव्याजनिशाकर'–यहाँपर 'व्याज' पद का उपादान होनेसे कैतवापह्नुति भी है अतः इस पद्यमें उपमा, अतिशयोक्ति और अपह्नुति अलङ्कारों का परस्परनिरपेक्षतया समावेश होने से यहाँ संसृष्टि अलङ्कार है ।

संकरालंकारस्यापि लक्षणं चन्द्रालोके पृथङ्नोपात्तमिति साहित्यदर्पणीयमेव तल्लक्षणं सङ्गृह्यते—

सङ्कर का लक्षण भी चन्द्रालोक में पृथक् नहीं कहा है अतः साहित्यदर्पणोक्तलक्षण का ही यहाँ संग्रह करते हैं—

संकरः—(साहि० १०-६६)—

'अङ्गाङ्गित्वेऽलङ्कृतीनां तद्वदेकाश्रयस्थितौ ।
सन्दिग्धत्वे च भवति सङ्करस्त्रिविधः...' ॥

(१) अलंकाराणामङ्गाङ्गित्वे = प्रधानाप्रधानभावे । अर्थात् यस्मिन् पद्ये प्रधानाप्रधानभावेन अलङ्काराणां स्थितिर्भवति तत्र अंगाङ्गिभाव-सङ्कर इत्याख्योलङ्कारो भवति ।

(२) यत्र पद्ये वाक्ये वा एकमेवाश्रयमवलम्ब्य द्वयोस्त्रयाणां वा अलङ्काराणावस्थितिर्भवति तत्र एकाश्रयानुप्रवेशसङ्कर इत्याख्यो-ऽलंकारो भवति ।

(३) यस्मिन् पद्ये वाक्ये वा 'अलंकारो वा अन्यो वाऽलंकारः' इति निर्णायकप्रमाणाभावेन सन्देहो भवति तत्र सन्देहसंकर इत्याख्या-ऽलंकारो भवति ।

संकर (साहि० १० ९९)—१ अङ्गाङ्गिभाव सङ्कर, २ एकाश्रयानुप्रवेश सङ्कर और ३ सन्देहसङ्कर इन प्रकारोंसे सामान्यतः सङ्कर तीन प्रकार का है।

(१) अङ्गाङ्गिभावसङ्कर—जिस पद्य में सम्मिलित अलङ्कारों का प्रधानाप्रधानभाव हो अर्थात् एक अलङ्कार प्रधान और बाकी अप्रधान हो वहाँ पर अङ्गाङ्गिभावसङ्कर नाम का अलङ्कार होता है ।

(२) एकाश्रयानुप्रवेशसङ्कर –जिस पद्य किंवा वाक्य में एक ही आश्रय का अवलम्बन कर दो किंवा तीन अलंकारों की अवस्थिति होती है वहाँ पर एकाश्रयानुप्रवेशसङ्कर नाम का अलङ्कार होता है ।

(३) सन्देहसङ्कर—जिस पद्य किंवा वाक्य में निर्णायक प्रमाण के न रहने से 'यह अलङ्कार है किंवा दूसरा अलङ्कार है' इस प्रकार सन्देह होता हो वहाँपर सन्देहसङ्कर नाम का अलङ्कार होता है ।

इत्थं च अलंकाराणां परस्परमुपकार्योपकारकभावे सति एकस्मिन्नेव पद्ये आश्रयत्वेन सम्मेलने सति, 'अयमलंकारो वा अन्यो वा' इति सन्देहे सति च अङ्गाङ्गिभाव = एकाश्रयानुप्रवेश-सन्धिसंकराख्यास्त्रयः संकरालंकारप्रकारा भवन्तीति भावः । किञ्च त्रिविधेऽप्यस्मिन् संकरे 'नीरक्षीर' न्यायेन अलंकाराणां पार्थक्ये प्रतीतिर्न भवतीति संसष्टितो वैलक्षण्यम् ।

एतावता अलंकारों में परस्पर उपकार्योपकारकभाव के रहते, एक ही पद में आश्रयत्वेन सम्मेलन होने से, और 'यह अलंकार है किंवा दूसरा अलंकार है ?' इस प्रकार सन्देह होने से अंगाङ्गिभाव, एकाश्रयानुप्रवेश और सन्देह-सङ्कर नाम के तीन प्रकार के सङ्करालङ्कार होते हैं। तीनों प्रकार के सङ्करों में दूधमें मिले हुए पानी के समान अलंकारों की पृथक् प्रतीति नहीं होती यही संसृष्टि अलंकार की अपेक्षा इसमें वैलक्षण्य है।

(१) तत्र अङ्गाङ्गिभावसङ्करोदाहरणं यथा शिशुपालवधे महाकाव्ये (१-३६)

करोति कसादिमहीभृतां वधाज्जनो मृगाणामिव यत्तव स्तवम् ।
हरेर्हिरण्याक्षपुरःसरासुरद्विपद्विष प्रत्युत सा तिरस्क्रिया ॥

अत्र 'असुरद्विपानाम्' इति 'हरिवद्धरिः' इति श्लिष्टपरम्परितरूपकं मृगाणामिवेत्युपमया संकीर्यते अनयोश्च परस्परमङ्गाङ्गिभावः । उपमा हि रूपकमुपकरोति इति प्रधानम् रूपकं चोपकार्यमिति अप्रधानम्, तयोः सङ्कर इति अङ्गाङ्गिभावसङ्करोदाहरणमिदम् ।

(१) अङ्गाङ्गिभावसङ्कर का उदाहरण जैसे शिशुपालवध के प्रथमसर्ग में [श्लोक० १-३९]—'हे हरे ! [सिंह] मृगोंके समान कंसादिराजाओंका वध करने से लोग तुम्हारी प्रशंसा करते हैं वह हिरण्याक्षप्रभृति राक्षस रूप गज को मारनेवाले आपका उलटा तिरस्कार ही है ।' यहाँपर 'असुरद्विपानाम्' और 'हरि वद् हरिः' इस अंश के वर्तमान श्लिष्टपरम्परितरूपक 'मृगाणामिव' इस उपमा के साथ संकीर्ण होता है। रूपक और उपमा का यहाँ पर परस्पर अङ्गाङ्गिभाव है, उपमा रूपककी उपकारिणी है अत एव प्रधान है, रूपक उपकार्य होनेसे अप्रधान है, उन दोनोंका यहाँ सङ्कर है अतः यह अङ्गाङ्गिभावसङ्करका उदाहरण है।

(२) एकाश्रयानुप्रवेशसङ्करोदाहरणं यथा शिशुपालवधे (१-१)—

श्रियः पतिः श्रीमति शासितुं जगज्जगन्निवासो वसुदेवसद्मनि ।
वसन्ददर्शावतरन्तमम्बराद्धिरण्यगर्भाङ्गभुवं मुनिं हरिः ॥

अत्र 'वासो', 'वसु' 'वस' इति वृत्त्यनुप्रासस्य 'सद्' इति श्रुत्यनुप्रासेन 'जगन्निवासो वसुदेवसद्मनि' इत्येकस्मिन् पादेऽनुप्रविष्टत्वात् सङ्करः, तथा च एकाश्रयानुप्रवेशसङ्करोदाहरणमिदम् ।

(२) एकाश्रयानुप्रवेशसङ्कर का उदाहरण शिशुपालवध महाकाव्य के प्रथम सर्ग में (श्लो० १-१)—'श्रियः पतिः श्रीमति शासितु' मित्यादि।

यहाँ पर 'वासो', 'वसु', 'वस' इन अंशों में वृत्त्यनुप्रास का, 'सद्' इस अंशमें श्रुत्यनुप्रास से 'जगन्निवासो वसुदेवसद्मनि' इस एक ही पाद में अनुप्रवेश होने से एकाश्रयानुप्रवेशसङ्कर हैं।

(३) सन्देहसङ्करोदाहरणं तथा शाकुन्तले—

'इदं किलाव्यांजमनोहरं वपुस्तपःक्लमं साधयितुं य इच्छति।
ध्रुवं स नीलोत्पलपत्रधारया शमीलतां छेत्तुमृषिर्व्यवस्यति ॥'

अत्र 'शमीलताम्' इत्यत्र रूपकं वा उपमा वेति सन्देहः, अन्यतरनिश्चये प्रमाणाभावेन रूपकोपमासन्देहसङ्करोदाहरणमिदम्।

इति श्री-खिस्ते इत्युपाह्वनारायणशास्त्रिणा संगृहीता
अलंकारसारमञ्जरी समाप्ता।

---

(३) सन्देहसङ्कर का उदाहरण जैसे शाकुन्तल में—बिना कृत्रिमता के मनोहर ऐसे शरीर के द्वारा तपस्याके क्लेशोंको सम्पादन करना जो चाहता है वह ऋषि अवश्य ही नीलकमल के पत्ते की धारा से शमीलता को छेदन करने का उद्योग करता है। यहाँ पर 'शमीलता' इस अंश में रूपक है किंवा उपमा है, यह सन्देह है। अन्यतर अलंकार के निश्चय करने में कुछ प्रमाण न रहने से यह रूपकोपमासंदेह-सङ्करालंकार का उदाहरण है।

इति श्री 'खिस्ते' इत्युपाह्वनारायणशास्त्रिणा विरचिता
अलङ्कारसारमञ्जरीविवृतिः समाप्ता।

श्रीगंगाधरसद्गुरुप्रतिफलत्सारस्वतज्योतिषः
श्रीरामाङ्घ्रिनिषेवणाप्तसुमतेः सन्तीर्णशास्त्राम्बुधेः।
श्रीमद्भैरवनायकात्मजनुषः सद्धर्मलक्ष्मीजुषः
श्रीनारायणशर्मणः कृतिरियं विद्वन्मुदे जायताम् ॥